www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
कृण्वन्तो विश्वमार्यम्

रविवार, 06 अक्टूबर 2013 | आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा का साप्ताहिक पत्र | सप्ताह रविवार 06 अक्टूबर, 2013 से 12 अक्टूबर 2013

आश्विन. शु.–02 ● वि० सं०–2070 ● वर्ष 78, अंक 76, प्रत्येक मंगलवार को प्रकाश्य, दयानन्दाब्द 190 ● सृष्टि–संवत् 1,96,08,53,114 ● इस अंक का मूल्य – 2.00 रुपये

डी.ए.वी. पूण्डरी द्वारा वृद्धाश्रम में मनाया गया राखी पर्व

डी.ए.वी. सीनियर सैकेण्डरी पब्लिक स्कूल पूंडरी के समाज कल्याण सदन की ओर से वृद्धाश्रम फतेहपुर के प्रांगण में रक्षा बंधन व श्रावणी पर्व बड़े धूमधाम से मनाया गया। सर्वप्रथम हवन–यज्ञ वैदिक मन्त्रोचारण द्वारा आचार्य रविन्द्र कुमार शास्त्री के ब्रह्मत्व में किया गया। यह विशेष हवन–यज्ञ आर्य युवा समाज इकाई की ओर से किया गया। कक्षा नवम् तथा कक्षा दशम के छात्र व छात्राओं के साथ यह पर्व मनाया गया। हवन–यज्ञ के पश्चात प्राचार्या साधना बख्शी के द्वारा आर्य युवा समाज इकाई के अन्तर्गत किए गए सामाजिक कार्यों का उल्लेख वरिष्ठ नागरिकों के समक्ष किया गया। वरिष्ठ नागरिकों द्वारा अपने जीवन के अनुभव बच्चों के समक्ष रखे गए। बच्चों ने सभी वक्ताओं के प्रेरणादायक विचारों को बड़े ही ध्यान से सुना। बच्चों के समक्ष जीवनोपयोगी बातों को सुनाकर सभी वरिष्ठ नागरिक प्रसन्नचित व प्रफुल्लित हो रहे थे। छात्रों ने उपस्थित सभी वरिष्ठ नागरिकों को तिलक, रक्षा सूत्र तथा ओम् के दुपट्टे गले में डालकर सम्मानित किया गया।

प्रधान चतुर्भुज शर्मा ने सभी आगन्तुक मेहमानों व प्राचार्या का धन्यवाद किया। शांतिपाठ के पश्चात् यज्ञ–प्रसाद बांटकर कार्यक्रम का समापन किया गया।

डी.ए.वी. लारेंस रोड अमृतसर में स्वामी विरजानंद जी को श्रद्धांजलि दी गई

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल लारेंस रोड अमृतसर में 14 सितम्बर 2013 को महर्षि दयानंद के गुरु स्वामी विरजानंद जी की पुण्य तिथि बड़ी श्रद्धा के साथ मनाई गई। इस अवसर पर विभिन्न सांस्कृतिक गतिविधियाँ करवाई गई। यह कार्यक्रम सप्ताह भर चला जो गुरु–शिष्य परम्परा को समर्पित था।

कार्यक्रम अंर्तगत स्वामी जी के जीवन और उनकी शिक्षाओं पर आधारित भाषण, कविता–गायन और लघु–नाटिकाएँ करवाई गई। विद्यार्थियों ने प्रेरणात्मक जीवन को कविता–गायन के द्वारा प्रस्तुत किया तथा उन विपतियों का भी वर्णन किया गया जिसकी अग्नि में तपकर वे कुन्दन बने और आकर्षक नारों द्वारा उनकी विद्वता, उच्च विचार, महानता व सादगी को दर्शाया गया। इसी अवसर पर में भाषण, लघु नाटिका, प्रश्नोतरी तथा चित्रकला द्वारा उनके चरित्र के विभिन्न पक्षों को उजागर किया गया।

स्कूल की प्रधानाचार्या जी ने विद्यार्थियों से संकल्प लिया कि वे भी स्वामी दयानंद जी की तरह ही आदर्श शिष्य बनें और उनकी शिक्षाओं को अपने जीवन में उतारें। अपनी बात को बढ़ाते हुए उन्होंने कहा कि अध्यापक हमेशा सर्वश्रेष्ठ होते हैं, उनका सम्मान होना ही चाहिए।

डी.ए.वी. कॉलेज फिरोज़पुर में मनाया गया वन–महोत्सव

डी.ए.वी. कॉलेज फॉर वूमेन, फिरोज़पुर कैंट में कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. पुष्पिंदर वालिया की अध्यक्षता में कॉलेज के एन.एस.एस. इको क्लब व एन.सी.सी. इकाई की ओर से वन–महोत्सव मनाया गया। इस समारोह के मुख्यातिथि थे श्री विजय भास्कर, सी.ई.ओ. कैंटोनमेंट बोर्ड, फिरोज़पुर छावनी। कॉलेज की प्रिंसिपल डॉ. पुष्पिंदर वालिया ने श्री विजय भास्कर जी का अभिवादन किया। और छात्राओं को पेड़ों के महत्व के बारे में बताते हुए कहा कि हमारे पूर्वज इनकी महत्ता को जानते थे, डॉ. वालिया ने कहा कि आज धरती को हरी ओढ़नी की जरुरत है। इस समारोह में पर्यावरण की प्रवक्ता श्रीमती ऋचा धवन ने वातावरण के संरक्षण में 'पेड़ों की भूमिका' विषय पर छात्राओं को आंकड़ों सहित सविस्तार जानकारी छात्रा शहनाज़, बी.ए. द्वितीय वर्ष की रशिम व बी.ए.तृतीय वर्ष की गुरिन्दरजीत कौर की स्वः रचित कविताओं ने सबका मन मोह लिया। मुख्यातिथि ने अपने अध्यक्षीय भाषण में कहा कि पेड़ों की रक्षा अपनी रक्षा है। पेड़ प्रकृति हैं, प्रकृति ईश्वर है। जो पेड़ों की रक्षा करता है, प्रकृति उसकी रक्षा करती है। उन्होंने छात्राओं से वृक्षों की रक्षा करने का संकल्प करवाया। इस समारोह में लगभ 100 छायादार, औषधीय व सजावटी पौधे लगाए गए।

स्वजातीय या विजातीय ईश्वर अथवा अपने आत्मा में तत्त्वान्तर वस्तुओं से रहित एक होने से वह 'अद्वैत' है। – स. प्र. समु. १

संपादक – श्री पूनम सूरी

www.thearyasamaj.org

ओ३म्
आर्य जगत्
सप्ताह रविवार 06 अक्टूबर, 2013 से 12 अक्टूबर, 2013

सर्वाङ्ग-सुन्दर बनें

● डॉ. रामनाथ वेदालंकार

सं वर्चसा पयसा सं तनूभिः, अगन्महि मनसा सं शिवेन।
त्वष्टा सुदत्रो विदधातु रायो, अनु मार्ष्टु तन्वो यद् विलिष्टम्।।

यजु. २.२४

ऋषिः **वामदेवः**। देवता **त्वष्टा**। छन्दः **त्रिष्टुप्**।

● [हम] (**वर्चसा**) ब्रह्मवर्चस से [और], (**पयसा**) दूध से, माधुर्य से, (**सम् अगन्महि**) संयुक्त हों, (**तनूभिः**) शरीरों से, (**सम्**) संयुक्त हों, (**शिवेन मनसा**) शिव मन से, (**सम्**) संयुक्त हों।, (**सुदत्रः**) शुभ दानी, (**त्वष्टा**) जगद्–रचयिता परमेश्वर, (**रायः**) [धन, चक्रवर्ती राज्य, सुख, आरोग्य आदि] ऐश्वर्यों को, (**वि–दधातु**) प्रदान करे, [और], (**यत्**) जो, (**तन्वः**) शरीर का, (**विलिष्टं**) त्रुटिपूर्ण अंग है, उसे, (**अनु मार्ष्टु**) परिमार्जित करे।

● हम चाहते हैं कि हम संसार में सर्वांग–सुन्दर बनकर रहें, षोडशकल चन्द्र के समान परिपूर्ण बनकर निवास करें। हमारे अन्दर ब्रह्मवर्चस हो, आत्मिक तेज हो, जिसके सम्बन्ध में कभी ऋषि विश्वामित्र ने कहा था कि ब्रह्म–तेज ही सच्चा बल है, अन्य बल उसके सम्मुख निःसार है। वह ब्रह्म–तेज का ही बल है, जिसके द्वारा शरीर से दुर्बल होते हुए भी अनेक मानव कोटि–कोटि जनों को अपने चरणों में झुकाते रहे हैं। साथ ही हमें 'पयः' भी प्राप्त हो। 'पयस्' शब्द दूध का वाचक होता हुआ भी रस, माधुर्य, शान्ति, निर्मलता, निश्छलता, सात्त्विकता आदि का भी द्योतक है। हमें पीने के लिए गो–रस और हृदय में बसाने के लिए उक्त माधुर्य आदि गुण प्राप्त हों। हम शरीरों से भी पुष्ट हों। हृदय में बसाने के लिए उक्त माधुर्य आदि गुण प्राप्त हों। हम शरीरों से भी पुष्ट हों। हमारे अन्नमय, प्राणमय, मनोमय, विज्ञानमय तथा आनन्दमय रूपवाले पंच शरीरों का समुचित विकास हो। हमारा मन भी शिव हो, क्योंकि जब तक मन अशिवसंकल्पों से युक्त रहेगा, तब तक हमें किसी भी क्षेत्र में उत्कर्ष प्राप्त होना सम्भव नहीं है। मन को साधकर ही मनुष्य उन्नति की ओर अग्रसर होता है, और मन की जीत पर ही उसकी जीत निर्भर है, मन के हारने पर उसका हारना अवश्यम्भावी है।

'त्वष्टा' परमेश्वर सारे जगत् का तरखान है, शिल्पी है, जिसका हस्त–कौशल सम्पूर्ण विश्व में प्रत्यक्ष दृष्टिगोचर हो रहा है। वह **'सुदत्र'** है, निरंतर सबको शुभ वस्तुओं का दान करता रहता है। वह हमें भी शुभ ऐश्वर्यों का–धन, चक्रवर्ती राज्य, सुख, आरोग्य आदि का दान करे। वह हमें भौतिक एवं आध्यात्मिक समस्त शुभ सम्पत्तियों का अधीश्वर बनादे। हमारे शरीर का कोई अंग यदि सदोष या त्रुटिपूर्ण हो गया है, तो वह कुशल शिल्पी उसे परिमार्जित, सुसंस्कृत एवं परिशुद्ध कर दे। यदि हमारे नेत्रों की दृष्टि–शक्ति मन्द हो गई है अथवा दृष्टि–शक्ति मन्द हो गई है अथवा दृष्टि–शक्ति तीव्र होते हुए भी हम उसका उपयोग अभय दृश्यों को देखने में करते हैं, तो त्वष्टा प्रभु हमारी मन्द या अपवित्र नेत्र–शक्ति को शुद्ध कर दें। इसी प्रकार श्रोत्र, मुख, नासिका आदि अन्य अंगों को भी मांजकर तीव्र–शक्तिमय एवं पवित्र कर दे। हे कलाकार त्वष्टा प्रभु! तुम हमारी तूलिका से रंग भरकर हमें सर्वांग–सुन्दर, सर्व–गुण–सम्पन्न और सर्व–शक्ति–समन्वित कर दो। ❑

वेद मंजरी से

इस अंक में प्रकाशित सभी लेखों में व्यक्त भावों व विचारों के लिए लेखक स्वयं उत्तरदायी हैं और इसमें किसी आपत्तिजनक बात के लिए 'सम्पादक' एवं 'आर्य जगत्' उत्तरदायी नहीं होगा।

तत्त्व-ज्ञान

● महात्मा आनन्द स्वामी

स्वामी जी ने कथा का उपसंहार करते हुए बताया कि जब मनुष्य पूर्ण समर्पण भाव से प्रभु की शरण में जाता है तो उसे अवश्य मार्ग मिल जाता है। यह लक्ष्य मिलता है गायत्री से। गायत्री के चारों चरणों से क्या प्राप्त होता है इसकी विशद चर्चा की। प्रभु पर विश्वास करने वाले को सारी विभूतियाँ प्राप्त हो जाती हैं। एक बार उस पर भरोसा तो करके देखो।

सपर्ण करने का अर्थ निकम्मा होकर बैठना भी नहीं है। ऋषि का कहना है–उसे जानो, उसे अपनाओ। गायत्री के प्रत्येक भाग का अर्थ समझो उसके अनुसार अपना मन, अपनी बुद्धि अपना चित्त बनाओ और शरीर भी उसके अनुकूल बनाओ तब जाके गायत्री की महिमा प्राप्त होगी। मायावाद और अध्यात्मवाद दोनों को साथ लेकर आगे बढ़ो। प्रभुकृपा अवश्य प्राप्त होगी।

अन्त में स्वामी जी ने कहा– ''तुम ही उसकी तलाश में नहीं वह भी तुम्हारी प्रतीक्षा में है। संसार के इस घोर घने जगंल में भटकने वाले मानव! हिम्मत न हार, तुझे प्रकाश मिलेगा अवश्य ज्योति मिलेगी अवश्य।

इस प्रकार पिछले अंक में महात्मा आनन्द स्वामी द्वारा 'बृहदारण्यकोषनिषद' की कथा–**''घोर घने जंगल में''** समाप्त हो गई ।

पाठकों के अनुरोध पर महात्मा आनन्द स्वामी का कथा प्रवाह जारी रखते हुए इस अंक से उनकी पुस्तक **''तत्त्व ज्ञान''** की धारावाहिक प्रस्तुति कर रहे हैं। 'तत्त्व ज्ञान' जैसे गहन विषय की गंभीरता और विशालता को लेकर स्वामी जी द्वारा लिखित प्रस्तावना से ही आरम्भ करते हैं–

कितना गम्भीर विषय है यह–तत्त्वज्ञान, जिसका वर्णन करते–करते बड़े–बड़े तत्त्वज्ञानी अन्त में यही कहते सुने गए कि ''यदि कहें कि जान लिया, तो यह अत्युक्ति है और यदि कहें कि जाना नहीं, तो यह भी यथार्थ नहीं है। हाँ, यह कह सकते हैं कि समुद्र का जल जितना एक नन्हे से सीमित लोटे में आ सकता है, उतना अल्पज्ञ ने सर्वज्ञ को जाना''–और जब वे उस अथाह तत्त्व का व्याख्यान करते–करते कोई थाह नहीं पाते, तब ''नेति–नेति'' पुकारकर मौन हो जाते हैं।

जब तत्त्वज्ञानियों की इस घाट पर यह दशा होती है, तब मेरा यहाँ ठिकाना कहाँ? और उसकी महिमा तो वाणी तथा मन की पहुँच से बहुत परे है, बुद्धि की दौड़ से भी। यह मन, बुद्धि तथा दूसरे सारे इन्द्रिय तो जड़ हैं। ये भला उस आत्मतत्त्व की बात क्या कह सकेंगे? तो फिर तुम 'तत्त्वज्ञान' की बात कहने का श्रम क्यों करते हो?

यह श्रम क्यों?

मेरा श्रम तो इसलिए है ताकि मेरी वाणी उस परमतत्त्व परमात्मा की चर्चा करने से कृतार्थ हो सके, मेरा मन उस परमतत्त्व के चिन्तन से पवित्र हो सके, मेरी बुद्धि उस परम–तत्त्व के गूढ़ार्थ से तीव्र तथा निर्मल हो सके। इसी बहाने (हेतु) से हे परम तत्त्व! तेरे गुण–गान करने का कुछ पुण्य प्राप्त हो जायेगा और इसी में जीवन की सफलता समझूँगा। अन्यथा इस संसार–सागर की गति को देखकर, इसमें पड़े जीवों की दयनीय अवस्था को देखकर, प्राणियों के हाहाकार और दुःखियों के करुण क्रन्दन को सुनकर तो ऐसा प्रतीत होने लगता है कि बहुत बुरी तरह से फँस गए हैं। कैसे छुटकारा मिलेगा इससे? इस संसार–सागर से कैसे तरेंगे? ये सारे दुःखित–त्रसित जीव क्या इसी प्रकार तड़पते रहेंगे? क्या इस अवस्था से ऊपर उठने का कोई उपाय ही नहीं है?

हम कैसे फँस गये संसार–सागर के इस मँझदार में? यह सागर कैसे प्रकट हो गया? यह सब–कुछ क्या है? क्या हम कोई भयावना स्वप्न देख रहे हैं? या वास्तव में भोग रहे हैं?

क्या यही है दुनिया?

कहते हैं यह संसार परमात्मा ने बनाया है। यदि उसी ने बनाया है, तो क्यों बनाया? कौन गया उससे प्रार्थना करने कि सृष्टि बना दे? यदि किसी के कहने पर ही जगत् बनाया था, तो फिर इसमें इतने दुःख क्यों? इतना रुदन क्यों? इतनी पीड़ा क्यों? इतना वैमनस्य क्यों? मनुष्य ही मनुष्य के रक्त का प्यासा क्यों? क्या यही मानवता है, जिसका नग्न रूप हम इन आँखों से देख रहे हैं? मानव–रक्त से वसुन्धरा की प्यास बुझाई जाती है। इस भूमि की खेतियाँ मानवी अस्थियों के चूर्ण से उपजाऊ बनाई जाती हैं। एक मानव–दल दूसरे मानव–दल के सत्यानाश में अपना गौरव समझता है। बड़ी–बड़ी अट्टालिकाएं धू–धू करके जल रही हैं और अपने आपको मानव कहनेवाला, अग्नि की उन प्रचण्ड ज्वालाओं में जीते जी जलनेवाली सहस्रों सतियों के हाहाकार को सुनकर अट्टहास

करता है! शिशु अनाथ होते हैं, तो क्या? नवविवाहिताएं विधवा होती हैं, तो क्या? रोगी और स्वस्थ नकली खाद्य पदार्थों से मरते हैं, तो क्या? –यही है क्या सृष्टि? यदि इसी का नाम सृष्टि है, तो प्रलय किसे कहेंगे? जीवन यह है, तो मृत्यु क्या होगी?

इस पर भी इस युग का मनुष्य कहता है कि वह बड़ा सभ्य हो गया है। ज्ञान, विज्ञान, शिक्षा, विद्या, नये–नये अविष्कार और सुधार, नये–नये विधान और सारे देशों के मनुष्यों का जीवनस्तर ऊँचा करने की नित्य नई योजनाएं–कितना भारी विस्तार और यत्न दिखलाई देता है! परन्तु परिणाम क्या है? दु:ख, कष्ट, घृणा, राग, द्वेष, स्वार्थ, वैमनस्य और सर्वनाश!

सब असफल हो गए

आधुनिक दुनिया में कार्ल मार्क्स उठा, लेनिन और स्टालिन ने परिश्रम किया, ताकि दुनिया के श्रमजीवियों को एकत्र करके नई दुनिया और नया आकाश बना दिया जाए। हिंसात्मक वृत्ति की ज्वाला जगा दी गई। आत्मा को ठुकरा दिया गया और देख लो–रूस का साम्यवाद किसी एक भी देश को सुखी न कर सका। और तो और, स्वयं रूस भी सुखी न हो सका। अमेरिका अपनी चार प्रकार की स्वतंत्रताओं की पताका लेकर खड़ा हुआ–अथाह धनराशि, ऐटम बम और सैनिक दल–बल के साथ। वह भी सफल न हो सका। इंगलिस्तान अपनी कूट राजनीति के बल–बूते पर यह कहता सामने आया कि फूट डालो और राज करो; परन्तु वह भी असफल हो चुका है। सारे देशों की साझी सुरक्षा–कौंसिल बनी थी कि संसार में युद्ध नहीं होने देंगे, परन्तु यह स्वयं कोरिया के नन्हे से युद्ध में ऐसी फँसी कि उससे बाहर निकलना भी उसे कठिन प्रतीत हो गया। वह भी असफल हो गई।

भारत उठा था–हिन्दू–मुसलमानों को एक करके रामराज्य स्थापित करने के लिए और इसके नेताओं ने अपना राज–धर्म बनाया 'धर्म–निरपेक्ष राज्य' (Secular State), परन्तु यह भी सर्वथा असफल हो चुका है। पाकिस्तानवालों ने तो अपनी नींव घृणा, कत्ल, आग और लूटमार पर रखी थी। समझा और कहा था कि पाकिस्तान बनते ही जमीन पर बहिश्त (स्वर्ग) आ जाएगा, परन्तु वह भी बुरी तरह असफल हुआ और चारों खाने चित गिरा। यूरोप के सारे ईसाई देश भी असफल हो चुके हैं।

परिणाम–हाहाकार

अब यह जो शोर सुनते आ रहे थे कि प्रगतिशील बनो, प्रगतिशील बनो, पुरानी और थोथी बातें छोड़ो, क्या प्रगति के अर्थ यही थे? भूख, रोग, महामारी, व्यभिचार, युद्ध अनाचार, अत्याचार, रक्तपात और रुदन तथा हाहाकार!!

यह सब–कुछ देखकर हृदय रखनेवाले के रोमांच हो जाता है और वह पुकार उठता है–क्या इस दयनीय अवस्था से, भँवरों तथा मँझधारों से भरपूर इस संसार–सागर से पार हो जाने का कोई उपाय है या नहीं?

डरो मत, उपाय है

तब उसे एक ध्वनि सुनाई देती है:

मा भैष्ट विद्वंस्तव नास्ति नाशः संसारतरणेऽस्त्युपायः।

येनैव याता यतयोऽस्य पारं तमेव मार्गं तव निर्दिशामि।।

'हे विद्वान्! तू डर मत, तेरा नाश नहीं होगा। संसार–सागर से तरने का उपाय है। जिस मार्ग से यतिजन इसके पार गये हैं, वह मार्ग मैं तुझे दिखाता हूँ।'

वह मार्ग 'तत्त्वज्ञान' ही का मार्ग है। जब तत्त्वविवेक द्वारा यह जान लिया जाय कि यह सारा दृश्य–जगत् क्या है, तो इस मनुष्य–शरीर तथा लोक–लोकान्तरों और देश–देशान्तरों का मूल्य समझ में आ जाता है। तब मानव मानवता को रुदन करने का अवसर नहीं देता। तब मनुष्य मनुष्य का रक्त नहीं पीता। तब एक मानव–दल दूसरे मनुष्यों का संहार नहीं करता अपितु उनसे प्रेम करता है, उन्हें आत्मज समझता है; अपना ही रूप और अपना ही साथी, सम्बन्धी और प्यारा मानने लगता है। मज्जा, अस्थि, मेद, मांस, रक्त, चर्म, त्वचा–इन सात धातुओं से बने मानव–शरीर के लिए फिर वह दूसरों के नाश का यत्न नहीं करेगा। दूसरों की हानि या नाश की भावना केवल इसलिए उत्पन्न होती है, ताकि विषयों का उपभोग किया जा सके। विषयों–शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध–का ज्ञान करानेवाले ज्ञानेन्द्रिय–श्रवण, त्वचा, नेत्र, जिह्वा और घ्राण– हैं। जब ये ज्ञान कराते हैं तो फिर पाँच कर्मेन्द्रियों–वाक्, हस्त, पाद, गुदा और उपस्थ– का झुकाव कर्मों की ओर हो जाता है। यदि तत्त्वविवेक से यह प्रकट हो जाय कि सारे पदार्थ जड़ हैं और ये मुझे मेरी सेवा, सहायता तथा कार्य–सिद्धि के लिए मिले हैं, तो मानव फिर विषयों में फँसेगा नहीं, अपितु विषयों को विष समझकर दूर ही से त्याग देगा। हाँ, विष को भी जब भस्म के रूप में या शोधकर शुद्ध कर लिया जाता है, तो वह नाना रोगों को दूर करने के लिए अमृत बन जाता है। इसी प्रकार ये विषय भी जब सत्त्वगुण–प्रधान आत्मा–बुद्धि द्वारा शोध लिये जाते हैं, तो अमृतवत् हो जाते हैं।

इस ग्रन्थ में क्या है?

इन सारी इन्द्रियों को विषयों की ओर ले–जानेवाला एक सूक्ष्म इन्द्रियाँ मन है। यह सारी इन्द्रियों का कण्ट्रोलर है। यदि इसको मनुष्य अपने वश में रख सके तो फिर इन्द्रियाँ भी मानव के सच्चे सहायक बन जाते हैं। तत्त्वज्ञान प्राप्त करने के लिए मन का निग्रह अत्यन्त आवश्यक है, इसलिए आपको इस ग्रन्थ में सबसे पहले इस मन–रूपी व्याघ्र को वश में करने का प्रकरण मिलेगा जिस मन के सम्बन्ध में श्री शंकराचार्य जी ने यह घोषणा की थी:

मनो नाम महाव्याघ्रो विषयारण्यभूमिषु।

चरत्यत्र न गच्छन्तु साधवो ये मुमुक्षवः।।

'मन नाम का भयंकर व्याघ्र विषयरूपी वन में घूमता फिरता है। जो साधु मुमुक्षु हैं वे वहाँ न जाएँ।'

परन्तु मन हमारा शत्रु नहीं, यह तो हमारा मित्र है। केवल इसकी वृत्ति का काँटा बदल देना है। प्राण तथा ध्यान द्वारा इस व्याघ्र को अपना दास बनाने के उपाय आप इस पुस्तक में पढ़ेंगे। परन्तु प्राण तथा ध्यान एक दृढ़ आसन ही से सिद्ध हो सकते हैं। दृढ़ आसन के लिए शरीर का स्वस्थ होना आवश्यक है और शरीर को ठीक रखने के लिए आयुर्वेद ने तीन उपस्तम्भों का वर्णन किया है–आहार, निद्रा और ब्रह्मचर्य। इन तीनों की जानकारी आपके लिए बहुत लाभदायक होगी। शरीर स्वस्थ होने पर प्राणायम तथा ध्यान सुगम हो जाता है, जिसके कितने ही अनुभव आपको इस पुस्तक में मिलेंगे। ध्यान–अवस्था से फिर समाधि में पहुँचना होता है। तभी सारे तत्त्वों से निखरे हुए आत्मा के दर्शन होते हैं। महामुनि गौतम ने न्याय दर्शन 4।2।38 में कहा भी है:

"समाधिविशेषाभ्यासात्।"

'समाधि–विशेष के अभ्यास से तत्त्वज्ञान उत्पन्न होता है।' तत्त्वज्ञान का अधिकारी बनने के लिए पर्याप्त तैयारी करनी पड़ती है। इसका वर्णन भी विस्तार से किया गया है, और आत्म–अनात्म, तत्त्व विवेक, वैराग्य–शम, दम, उपरति, तितिक्षा, श्रद्धा, समाधान और मुमुक्षुत्व तथा प्रभु–कृपा प्राप्त करने के लिए अनन्यभक्ति–तत्त्व का प्रयोग–इन सारे साधनों का उल्लेख इस ग्रन्थ में किया गया है।

वैराग्य की भावना के उद्‌बोधन के लिए भगवान् राम की व्यथा की कथा का भी वर्णन किया गया है और अन्त में, संसार का तत्त्व क्या है, इसका रहस्य भी खोल दिया है। वेद भगवान् तथा उपनिषदों द्वारा मिले आदेश भी आप इसमें पढ़ेंगे। मूल तत्त्व तो दो ही हैं– आत्मतत्त्व और अनात्मतत्त्व। प्रकृति के ही द्वारा परमतत्त्व की छोटी–सी सामर्थ्य से सृष्टि को बनानेवाले तत्त्व प्रकट हुए। जीवात्मा का उसके साथ सम्बन्ध हुआ और सुप्त–अवस्था जाग्रत् में बदल गई। जिस प्रकृति को परमात्मा ने गति दी, वह तीन गुणोंवाली थी–सत्त्व, रजस्, तमस् गुणवाली। ये ही गुण आगे सारे तत्त्वों में भी गये। ये ही तीन गुण संसार की हर वस्तु, हर पदार्थ में न्यूनाधिक, नाना मात्राओं में विद्यमान हैं। इन्हीं के कारण सृष्टि में महाभिन्नता दिखलाई देती है; नाना रूप, नाना योनियाँ, नाना विचारधाराएँ और नाना नाम सामने आते हैं। वास्तव में यह जग तीन गुणोंवाली प्रकृति का विकार और जीवात्मा के कर्मों ही का विस्तार है। इस विवेक से मनुष्य समझने लगता है कि जब तक जीवात्मा प्रकृति के तत्त्वों में फँसा है, इन्हीं की चेष्टाओं की पूर्ति में लगा है, तब तक इसे किसी प्रकार की शान्ति प्राप्त नहीं हो सकती। दुनिया के आधुनिक वैज्ञानिक तथा विद्वान् जितना भी यत्न चाहें कर लें, केवल भौतिक तत्त्वों को प्रसन्न करने, केवल माया की आज्ञाओं को पालने और केवल अनात्म वस्तुओं के एकत्र करने से दु:ख बढ़ तो सकते हैं, कम नहीं हो सकते। सुख प्रवृत्ति में नहीं, निवृत्ति में है। ये ही दो मार्ग सृष्टि की जनता के सामने खुलते हैं; इन्हीं को प्रेय तथा श्रेय मार्ग भी कहते हैं। इन्हीं पर चलकर या तो आसुरी सम्पदा इकट्ठी होती है या दैवी सम्पदा। तत्त्वज्ञान प्राप्त करनेवाले दैवी सम्पदा को पसन्द करते हैं; तत्त्वज्ञान से शून्य आसुरी सम्पदा को प्यारा समझते हैं, तभी वे मृगतृष्णा के जल की तरह सुख के धोखे में दु:ख–सागर में जा गिरते हैं। आज दुनिया के बहुत–से लोग आसुरी सम्पदा एकत्र करने में लगे हुए हैं। शंका हो सकती है कि इस प्रकार से दुनिया की उन्नति तथा प्रगति सर्वथा रुक जायेगी। परन्तु ऐसी शंका उचित नहीं है, क्योंकि आसुरी या दैवी सम्पदा का सम्बन्ध संसार के नाना पदार्थों, वस्तुओं, आविष्कारों से नहीं अपितु अन्त:करण से है। संसार की कोई वस्तु धन, वैभव, ऐश्वर्य इत्यादि न आसुरी हैं, न दैवी। हाँ, इनका प्रयोग जिस भावना, जिस वृत्ति, जिस लक्ष्य और जिस उद्देश्य से होता है, वह उसे आसुरी या दैवी बना देता है। धन एक साधन–मात्र है। इसका दुरुपयोग आसुरी भावना से होता है और सदुपयोग दैवी भावना से किया जाता है।

दुनिया की सबसे बड़ी आवश्यकता

आज की दुनिया की सबसे बड़ी आवश्यकता यही है कि दुनिया वालों को बतलाया जाय कि जिस सम्पदा के तुम पुजारी बने बैठे हो, वह सम्पदा के दु:खी कर रही है और आगे और भी अधिक दु:ख–सागर में डुबो देगी। नाना प्रकार के दु:खों, झगड़ों और आपत्तियों से बचना है तो पहले तत्त्वज्ञान प्राप्त कर लो। फिर ये ही नये–नये आविष्कार, हर प्रकार के धन और नई प्रगति तुम्हारे सुख का हेतु बन जायेंगे। क्योंकि:

"ज्ञाते तत्त्वे कः संसारः।"

शेष पृष्ठ 7 पर ☞

www.thearyasamaj.org

हमारी पहुँच का ईश्वर

● आचार्या सूर्या देवी चतुर्वेदा

ईश्वर सर्वव्यापक ईश्वर जहाँ सर्वनियन्ता, सर्वशक्तिमान्, सर्वज्ञ, सर्वाधार, सर्वेश्वर आदि पदावलियों का वाच्य है, वहीं वह **सर्वव्यापक** इस पद विशिष्ट से भी वाच्य होता है। परमेश्वर सर्वव्यापक है। वह ब्रह्माण्ड के अणु से अणु, परमाणु से परमाणु, स्थूल से स्थूल, सूक्ष्म से सूक्ष्म समग्र पदार्थों से व्याप्त है। उसकी व्यापकता को वेदों ने भलीभांति प्रतिपादित किया हैं। मन्त्र है–

सः सध्रीची स विषूचीर्वसान आ वरीवर्ति भुवनेष्वन्त

ऋ. 1.164.31

अर्थात् **सः सध्रीचीः**= वह परमेश्वर अपने साथ विचरने वाले, और **सः विषूचीः**= वह अपने से दूर विषम मति में चलने वाले संसार को, **वसानः**= आच्छादित करता हुआ, **भुवनेषु अन्तः**= लोक लोकान्तरों के मध्य, **आ वरीवर्त्तिः**= निरन्तर अच्छे प्रकार वर्तमान है, विद्यमान है।

एषो ह देवः प्रदिशोऽनु सर्वाः पूर्वो ह जातः स उ गर्भे अन्तः।।

यजु. 32/4

अर्थात् **एषः देवः**= यह दिव्य परमात्मा, **ह**= निश्चय से, **सर्वाः प्रदिशः**= सब दिशाओं उपदिशाओं में, **अनु**= अनुकूलता से व्याप्त है, **सः उ** = वह ही, **गर्भे अन्तः**= अन्तः करण में विद्यमान है।

तस्मिन्निदं सं च विचैति सर्व सऽओतः प्रोतश्च विभूः प्रजासु।।

यजु. 32/8

अर्थात् **तस्मिन्**= उस परमेश्वर में, **इदं सर्वम्**= यह सम्पूर्ण जगत्, **सं एति**= प्रलय काल में संगत होता है, **च**= और उत्पत्ति समय में **वि, च**= पृथक्, स्थूल रूप में विद्यमान होता है। **सः**= वह, **विभूः**= व्याप्त हुआ परमेश्वर, **प्रजासु**= उत्पन्न हुई सृष्टि के जड़ व जीवों में **ओतः**= खड़े ताने रूप सूत में जैसे वस्त्र, **च**= तथा, **प्रोतः**= तिरछे सूत में जैसे वस्त्र, ओत प्रोत है, वैसे वह परमात्मा जगत् में ओत प्रोत है, व्याप्त हो रहा है।

ईश्वर की व्यापकता प्रतिपादकता इन मन्त्रों से सुस्पष्ट है कि जगत् की कोई भी वस्तु ईश्वर से खाली नहीं है। ऐसा कोई भी जड़ पदार्थ नहीं है, जहाँ ईश्वर की व्यापकता न हो, उसकी सत्ता न हो।

परमेश्वर की सर्वव्यापक विद्यमानता से देश देशान्तर के पशु पक्षी चहक रहे हैं। वृक्ष, लात, गुल्म, हरे भरे पुष्पित पल्लवित बढ़ रहे हैं, झड़ और सूख रहे हैं। सभी ईश्वर की नियोजित गति में प्रवहमान हो रहे हैं। नदियाँ, सागर कल कल, ज्वार भाटा की अठखेलियों से भरे इतरा रहे हैं। हरित परिधान में धरती अन्न, फल, मूल, कन्द की दन्तावली में विहस रही है। सूर्य, चांद प्रकाश, आह्लाद की ऋद्धि बाँट रहे हैं। **न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकम्.**[1] **भयादस्याग्निस्तपति.**[2] आदि उपनिषद् वचन ईश्वरीय व्यापकता को ही उपदिष्ट कर रहे हैं।

जो कुछ भी हमें प्राप्त है, वह सर्वव्यापक प्रभु की कृपा का ही प्रताप है।

1. न तत्र सूर्यो भाति न चन्द्रतारकं नेमा विद्युतो भान्ति कुतोऽयम् अग्निः।

तमेव भान्तमनुभाति सर्वं तस्य भासा सर्वविदं विभाति।। कठो. 5/15।।

2. भयादस्याग्निस्तपति भयात्तपति सूर्यः। भयादिन्द्रश्च वायुश्च मृत्युर्धावति पञ्चमः।। कठो. 6/3।।

ईश्वर की खोज

वेद और उपनिषदादि वचनों में वर्णित ईश्वर जैसे लोकलोकान्तर की दिशाओं, उपदिशाओं में विद्यमान है, वैसे ही मनुष्य के अन्दर भी विद्यमान है। उस महान् सर्वव्यापक ईश्वर की सन्निधि, उपलब्धि के लिये मनुष्य ने जब जब होश संभाला है, तब तब उसने **'इन्द्रस्य युज्यः सखा'**[1] जीवात्मा का सदा साथ रहने वाला जो मित्र परमेश्वर है, उसे ढूँढ़ने के लिये बाहरी चकाचौंध के मन्दिरों, मठों, मस्जिदों व गिरजाघरों में खूब दौड़ लगाई है। पर्वतों की ऊंची श्रेणियाँ, गहरी घाटियाँ, गुफाएँ, कैलाश के हिम खण्ड, केदारनाथ, बद्रीनाथ, श्रीनाथ, ऋषिकेश, वैष्णोदेवी, तिरुपति आदि के देवालय भी नहीं छोड़े। काशी, प्रयाग, हरिद्वार के तीर्थ, मथुरा, वृन्दावन के सकरे गलियारों की खाक भी खूब छानी है।

खोज में असफलता

इस खोज में उन अन्वेषकों को व्यापक ईश्वर मिल गया हो, ऐसा कहने का साहस न कोई कर सका है, न कोई कर सकेगा। उनके इस श्रम में जो मिला है, वह है प्राकृतिक सौन्दर्य, मठ मन्दिरों के ढ़ाँचे, मूर्तियों की सजावट, उनकी काल्पनिक मुखाकृतियाँ, जल स्रोत, झरने, वहाँ की तड़क भड़क और लोगों की भीड़ भाड़। बहुत बार तीर्थ स्थलों में लम्बी कतारों के फंदे में ऐसे फंसते हैं कि निकलना कठिन होता है।

असफलता का कारण गलत स्थान चयन

जानते हैं मनुष्य के श्रम का यह ईश्वर प्राप्ति विषयक असफल परिणाम क्यों होता है? क्योंकि हम ना समझी से ईश्वर को ढूँढ़ते हुए गलत स्थान चुन लेते हैं। गलत स्थान का चयन, परिणाम में सुखदायी नहीं होता। गलत स्थान श्रम तो लेता है, पर विश्रम= आनन्द, सुख, शान्ति, आराम नहीं दे पाता।

एक बार एक व्यक्ति की कमरे में सिलाई का काम करते हुए पटच्चरों को संगठित करने वाली सूई खो गई। संयोग से कमरे में अन्धेरा था, संन्ध्याकाल भी था। सूई का दावेदार व्यक्ति अंधेरे को छोड़ कर सड़क पर पहुँच गया। सड़क की जगमगाती रोशनी में सूई ढूँढ़ने लगा। तभी उधर से जा रहे अन्य व्यक्ति ने पूछा– 'क्यों भाई क्या ढूँढ़ रहे हो? उसने उत्तर दिया, मेरी सुई खो गई, वही ढूँढ़ रहा हूँ। पूछने वाला दूसरा व्यक्ति भी सहानुभूतिवशात् सुई ढूँढ़ने लगा। थोड़ा श्रम करने के पश्चात् उसने पुनः पूछा, अरे भाई! यह तो बता कि तेरी सुई खोयी कहाँ है? वह स्थान कौन सा है? उसने उत्तर दिया– खोयी तो कमरे में ही है, पर वहाँ अन्धेरा है अतः यहाँ सड़क पर इस जगमगाती रोशनी में ढूँढ़ रहा हूँ। सहायक व्यक्ति उसकी मूर्खता पर मत्था ठोंकते हुए आगे बढ़ गया। यह है गलत श्रम का परिणाम। गलत स्थान पर ढूँढ़ने पर उसे सुई नहीं मिलेगी, यह नितान्त सत्य है।

यही गलत स्थान चयन की नासमझी, मनुष्य की ईश्वर की खोज में भी है। स्मरण रखें! दृश्य जगत् में व्यापक ईश्वर मनुष्य के लिये नहीं खोया है। उसके लिये तो उसके अन्तःकरण में वर्तमान जो ईश्वर है, वह खो गया है। जिसकी खोज के लिये मनुष्य बाहर तो दौड़ रहा है और अपने अन्दर झाँकने की कोशिश भी नहीं कर रहा। खोयी हुई सुई की अनुपलब्धि में जैसे गलत स्थान और अन्धकार दो कारण थे, वैसे ही ईश्वर की अनुपलब्धि के भी दो कारण हैं– गलत स्थान में खोज और अज्ञानरूप अन्धकार।

1. ऋ. 1/22/19।।

ईश्वर प्राप्ति का उचित स्थान

मठ, मन्दिर, चर्च, मस्जिद आदि ईश्वर प्राप्ति के गलत स्थान हैं, सही स्थान मनुष्य का अपना शरीर, शरीर के अवयव, अन्तःकरण व आत्मा हैं। क्योंकि मनुष्य का आत्मा जो परमेश्वर का भान करने वाला है वह उसके अपने शरीर में है, शरीर के बाहर नहीं। ईश्वर की प्राप्ति, उसकी खोज मनुष्य के लिये शरीर में संभव है, शरीर के बाहर नहीं। बाहर तो ईश्वर की महिमा और उसका अधिकार दीखता है। ईश्वर प्राप्ति का सही स्थान बताते हुए **मुण्डकोपनिषद्** में कहा है–

यः सर्वज्ञः सर्वविद्यस्यैष महिमा भुवि। दिव्ये ब्रह्मपुरे ह्येष व्योम्न्यात्मा प्रतिष्ठितः। मनोमयः प्राणशरीरनेता प्रतिष्ठितोऽन्ने हृदयं सन्निधाय। तद्विज्ञानेनपरिपश्यन्तिधीराआनन्दरूपममृतं यद्विभाति।।

मुण्ड. 2.2.7

अर्थात् जो सर्वज्ञ है, सर्ववित् है, सर्वत्र व्यापक है जिसकी महिमा भूलोकादि तथा दिव्य ब्रह्मपुर हृदय में, हृदयाकाश में प्रतिष्ठा पा रही है, जो मनोगम्य है, जो प्राण व शरीर का, **नेता**= संचालक है, जो अन्नादि भोगों में विद्यमान है उसे हृदय में, **सन्निधाय**= स्थित कर, **धीराः**= ज्ञानी उस प्रभु को जानकर उसका साक्षात्कार करते हैं। जिसका हृदय में अमर आनन्द स्वरूप प्रकाशित हो रहा है।

उपनिषद् वचन का भाव स्पष्ट है कि **ईश्वर प्राप्ति का सही स्थान हृदय है। आत्मज्ञानियों ने हृदय में ही ईश्वर का साक्षात्कार किया है और आज तक ब्रह्मा से लेकर दयानन्द पर्यन्त करते रहे हैं।**

उचित स्थान होने पर भी अज्ञान बाधक

सही स्थान का परिज्ञान होने पर भी अज्ञान, अन्धकार ईश्वर प्राप्ति का बहुत बड़ा बाधक है। अन्धकार में हाथ को हाथ भी नहीं सूझता। ईश्वर प्राप्ति का अज्ञान तमस् है– राग–द्वेष, दुःख–दर्द, हानि–ग्लानि, मोह–माया, मद–मात्सर्य आदि। इस अन्धकार में ईश्वर का आनन्द, प्रकाश, ज्ञान आदि का मूल्य घट गया है। अमूल्य मूल्यवान् हो गया है और मूल्यवान् अमूल्य बन गया है। लोक लोकान्तर की महनीय शक्ति ईश्वर, मात्र ईश्वर शब्द रूप में सिमट गया है। ईश्वर का मानवीयकरण भी हो गया। जिसके जयघोष हैं– हरे रामा हरे रामा, सीता राम, राधे श्याम, जय श्री कृष्णा आदि।

निराकार, सर्वशक्तिमान् सर्वाधार, सर्वव्यापक ईश्वर की प्राप्ति के लिए, उसकी, खोज के लिए वेद, उपनिषद् आदि ग्रन्थों में अनेक उपाय, प्रकार निर्दिष्ट किये हैं। जिनमें प्रथम कल्पिक सर्वोपरि उपाय है, अपने अन्दर का अज्ञान, अन्धकार, दुरित को दूर करना।

अज्ञान निवारण आवश्यक

अज्ञान निवारण निर्देश का प्रसिद्ध परिज्ञात वेदादेश मन्त्र है–

विश्वानि देव सवितर्दुरितानि परा सुव। यद्भद्रं तन्न आ सुव।।

यजु. 30/3।।

महर्षि दयानन्द ने **संस्कारविधि** में इस मन्त्र का एवंविध अर्थ किया है–

हे सकल जगत के उत्पति कर्ता, समग्र ऐश्वर्य युक्त, शुद्ध स्वरूप, सब सुखों के दाता परमेश्वर! आप कृपा करके, हमारे सम्पूर्ण दुर्गुण, दुर्व्यसन और दुःखों को दूर कर दीजिए, जो कल्याण कारक गुण, कर्म, स्वभाव और पदार्थ है, वह सब हमको प्राप्त कीजिए।

ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका में भी महर्षि ने इस मन्त्र का ऐसा ही अर्थ लिखा है–

हे सच्चिदानन्दानन्तस्वरूप! हे परमकारुणिक! हे अनन्तविद्य! हे विद्याविज्ञानप्रद! देव = हे सूर्यादिसर्वजगद्विद्याप्रकाशक! हे सर्वानन्दप्रद! सवितः= हे सकलजगदुत्पादक! नः = अस्काकम्, विश्वानि= सर्वाणि, दुरितानि= दुःखानि,

शेष पृष्ठ 8 पर ☞

www.thearyasamaj.org

स्वावलंबी को सर्वत्र प्रतिष्ठा व सम्मान मिलता है

● डा. अशोक आर्य

यह वेद सम्मत सामाजिक नियम है कि जो व्यक्ति स्वावलंबी है, जो व्यक्ति दूसरों पर निर्भर न होकर अपने सब कार्य, सब व्यवसाय आदि स्वयं करता है, समाज उसे आदर की दृष्टि से देखता है, उसे सम्मान देता है। स्वावलंबी व्यक्ति जहाँ भी जाता है, उसका खूब आदर सत्कार होता है। ऐसे व्यक्ति द्वारा अपना काम स्वयं करने से उसका अनुभव दूसरों से अधिक होता है, उसकी कार्यकुशलता भी अन्यों से कहीं अधिक होती है तथा वह जो कार्य करता है, उसे करने में गति भी तीव्र होती है। इस तथ्य को ऋग्वेद में बड़े ही सुन्दर ढंग से स्पष्ट किया गया है। मन्त्र इस प्रकार उपदेश दे रहा है।

स्वः सवाय धायसे,
क्रिनुताभ्रित्विग्रित्विजम।
सतोमं यज्ञं चादरं, वनेमा ररिमा वयं।।
ऋग्वेद 2.5.7

मन्त्र कहता है कि हे मानव! स्वावलंबन को तुम अपनी पिष्टी के लिए धारण करो। हे यजमान! तुम ऋतु के अनुकूल यज्ञ करो। हमने दान दिया है, अतः हम अधिक प्रशंसा और यज्ञ (सम्मान) को प्राप्त करें।

मन्त्र में सर्वप्रथम स्वावलंबन पर बल दिया गया है। आगे बढ़ने से पूर्व स्वावलंबन के सम्बन्ध में जानकारी होना आवश्यक है, इसे जाने बिना इस मन्त्र के भाव को ठीक से नहीं समझ सकते। अतः आओ पहले स्वावलंबन शब्द को समझें:–

स्वावलंबन क्या है?:–

स्वावालंबन से अभिप्राय स्वत्व की अनुभूति और उसके प्रकाशन से होता है। जब मानव 'स्व' को ही भूल जाए तो उसका अवलंबन भी कैसे करेगा? एक पौराणिक कथा के अनुसार पवन पुत्र हनुमान ने एक शाप के अंतर्गत स्वत्व को भुला दिया गया था। इस कारण अत्यंत शक्तियों के स्वामी होने पर भी हनुमान जी निष्क्रिय से ही रहते थे। वह 'स्वशक्ति से अनभिज्ञ ही रहते थे। इस कारण सदा भयभीत से, भीरु से होकर भटकते रहते थे। जब उन्हें उनकी शक्तियों का स्मरण दिलाया गया तो उन्हें पुनः पता चला कि वह तो शक्ति का भण्डार हैं। बस फिर क्या था वीरों की भाँति उठ खड़े हुए तथा शस्त्र हाथ में लिए, शत्रु के संहार को चल पड़े। जिधर भी निकले शत्रु को दहलाते चले गए। उनका नाम सुनकर ही शत्रु काँपने लगे। इससे स्पष्ट होता है कि जब तक हम 'स्व' को नहीं जानते, तब तक हम कुछ भी नहीं कर पाते इसलिए 'स्व' का ज्ञान होना आवश्यक है। किन्तु यह 'स्व' किसे कहते हैं, इसे भी जानना आवश्यक है।

'स्व' का अर्थ है:–

'स्व' से भाव होता है आत्मा या जीवात्मा। स्व का भाव स्पष्ट होने से हम स्वावलंबन का अर्थ भी सरलता से समझ सकते हैं। स्व के अर्थ को आगे बढ़ाते हुए हम कह सकते हैं कि स्वावलंबन का अर्थ हुआ – उस आत्मा अथवा जीवात्मा के प्रकाश का आश्रय लेना अथवा उस आतंरिक शक्ति का उपयोग और प्रयोग करना। जब कोई व्यक्ति स्व का अवलंबन करता है तो उस में किसी प्रकार की स्वार्थ की भावना नहीं रहती। सब प्रकार के स्वार्थों से वह ऊपर उठ जाता है। वह अपने पण को स्वाहा कर देता है, **"इदं न मम"** अर्थात् यह मेरा नहीं है, की भावना बलवती होती है। इससे स्पष्ट होता है कि आत्मिक शक्ति का अवलंबन ही स्वावलंबन होने से वेद में स्वाहा और स्वधा शब्दों का अत्यधिक व सम्मान से प्रयोग होता है। यज्ञ में हम जो भी पदार्थ डालते हैं यज्ञ अग्नि उसे अपने पास न रखकर सूक्ष्म कर आगे बढ़ा देता है इसे बढ़ाने के पश्चात् आगे बाँटने के लिए इसे वायु मंडल को दे देता है। जब मानव अपने जीवन को यज्ञमय बना लेता है तो वह भी दो हाथों से कमाता है तथा हजारों हाथों से बाँटने लगता है। आप कहेंगे दो हाथों से कमाकर हजारों हाथों से बाँटने के लिए तो सामग्री ही उसके पास न रहेगी। इसका अर्थ क्या हुआ? इसका भाव है कि हे मानव! तू इतनी मेहनत कर, तू इतना पुरुषार्थ कर, इतना यत्न कर कि जो तूने कमाया है वह तेरी शक्ति से कहीं अधिक होगा क्योंकि तूने अकूत प्रयत्न किया है। इससे तेरे पास इतनी सम्पत्ति होगी कि जो हजारों हाथों से बाँटने पर भी समाप्त न होगी अपितु निरंतर बढ़ती ही चली जाएगी। यही मानव की यज्ञ–रूपता है।

"इदं न मम" का अर्थ :–

जब हम स्वाहा शब्द का प्रयोग करते हैं तो साथ ही बोलते हैं "इदं न मम". अर्थात् जो कुछ मैंने यज्ञ, में डाला है उसमें मेरा कुछ नहीं है। सब कुछ समाज का दिया हुआ होने के कारण उस समाज का ही है। इस त्याग बुद्धि की उत्पत्ति ही स्वाहा – बुद्धि है। इस शब्द के प्रयोग में हम में नम्रता आ जाती है। सेवा का भाव जाग्रत होता है, साथ ही यह भी हम जान जाते हैं कि हमारे पास जो कुछ भी है, वह हमारा नहीं है। हम तो मात्र रक्षक हैं, तो किसी को कुछ भी देते समय हमें कष्ट के स्थान पर गर्व होगा।

स्वधा से भाव:–

एक ओर तो स्वार्थ भाव को छोड़ना है तो दूसरी ओर 'स्वधा' शब्द दिया गया है। जिसका भाव है – स्व – आत्मप्रकाश, मनोबल, आत्मिक बल को, धा – धारण करना। तुच्छ स्वार्थ – बुद्धि को छोड़ना चाहिए और अपने अन्दर स्वधा या आत्मिक बल को धारण करना चाहिए। यही स्वाहा और स्वधा का वास्तविक अर्थ है। अतएव मन्त्र में कहा गया है कि स्व अर्थात् आत्मा के ज्ञान के लिए स्वधा (आत्मिक बल) को प्राप्त करो। इससे स्पष्ट होता है कि स्वधा का अर्थ है आत्मिक बल। यह आत्म बल ही है जो मानव में नवशक्ति का संचार करता है, यह आत्मिक बल ही है, जिससे मानव बड़े महान् एवं दुर्धर्ष कार्य करने में भी सफल हो जाता है। इसके बिना मानव कुछ भी नहीं कर सकता। वह अधूरा होता है। अतः आत्मबल अर्थात् स्वधा के द्वारा ही मानव में यज्ञीय भावना आती है। परोपकार की अग्नि उसमें प्रदीप्त होती है, दान देने में प्रवृति होती है और दूसरों के सहयोग की भावना जाग्रत होती है। इससे उसे यश मिलता है, उसे कीर्ति मिलती है तथा सर्वत्र उसका गुणगान होता है।

104, शिप्रा अपार्टमेंट, कौशाम्बी
जिला गाजियाबाद

☞ *पृष्ठ 3 का शेष*

तत्त्व-ज्ञान

'तत्त्वज्ञान हो जाने पर संसार तुच्छ प्रतीत होने लगता है।' योग–शिखोपनिषद् में ब्रह्म को महेश्वर यह रहस्य बतलाते हैं:

'परम–तत्त्व के ज्ञान से ही मन स्थिर हो सकता है।' यह तत्त्वज्ञान कितना अनिवार्य है, इसे प्रकट करने के लिए यहाँ तक कह डाला कि:

अविज्ञाते परे तत्त्वे शास्त्राधीतिस्तु निष्फला।

'परम–तत्त्व को यदि न जाना, तो शास्त्राध्ययन निष्फल (व्यर्थ) ही है।'

यह तत्त्वज्ञान मानव शरीर ही में प्राप्त हो सकता है। इस दुर्लभ साधन 'मनुष्यत्व' को पाकर भी यदि तत्त्वज्ञान प्राप्त न किया तो फिर कब किया जायेगा? इसी विचार से कि इस मानव को तत्त्वज्ञान के सम्बन्ध में कुछ सुभीता प्राप्त हो, यह पुस्तक आप तक पहुँचाई जा रही है।

पुस्तक लिखने में कठिनाई

इसके लिखने में सबसे बड़ी कठिनाई तो यही थी कि यह विषय बड़ा गहन–गंभीर है और मेरी बुद्धि अल्प है, परन्तु एक और कठिनाई जो सामने आकर खड़ी हो गई, वह यह थी कि जब ध्यान–अवस्था में तत्त्व–विचार होता, भिन्न–भिन्न तत्त्वों का निरीक्षण होता, विवेक होता, तो सब–कुछ स्पष्ट देखा जाता कि समष्टि–रूप सूक्ष्म तन्मात्राएँ किस प्रकार अब भी नित्य नई सृष्टि रचने में लग गई हैं। रूप–तन्मात्रा की ज्योति कितनी सुन्दरता से सब दृश्य दिखालाती है और आगे बढ़त–बढ़ते केवल एक अत्यन्त शुभ्र विस्तृत प्रकाश ही रह जाता है; फिर और कुछ भी दृष्टिगोचर नहीं रहता। यह सब ध्यान–अवस्था में तो प्रत्यक्ष होता है, परन्तु ध्यान–अवस्था से बाहर आकर जब लिखने के लिए तैयार होता, तो कुछ भी नहीं लिख पाता और अब भी अवस्था यही है– जो कुछ ध्यान–अवस्था में देखा गया है, आत्म तथा अनात्म पदार्थ का जो पृथक्–पृथक् दृश्य अनुभव हुआ है, वह लेखनी में लाने में मैं सर्वथा असमर्थ रहा हूँ। वह 'सर्वतत्त्वैर्विशुद्धम्' सारे भौतिक तत्त्वों में सर्वथा अलग ही झाँकी, एक ऐसी अवस्था में ले जाती है, जहाँ लिखना–पढ़ना क्या, कुछ भी संकल्प नहीं रहता। हाँ, मुण्डक ऋषि के शब्दों में इतना कहा जा सकता है:

हिरण्मये परे कोशे विरजं ब्रह्म निष्कलम्।
तुच्छुभ्रं ज्योतिषां ज्योतिस्तद् यदात्मविदो विदु:।।

मुण्ड० 2।2।9।।

'सुनहरी परम कोश (हृदय–कमल) में निर्मल निरवयव ब्रह्म है, वह शुभ्र है, ज्योतियों का ज्योति है; उसको वे जानते हैं जो आत्मा (अपने–आप) को पहचानते हैं।'

केनोपनिषद् के ऋषि का अनुभव यह है कि:

न तत्र चक्षुर्गच्छति न वाग्गच्छति नो मनो नविघ्नो नविजानीमो यथैतदनुशिष्यादन्यदेव तद्विदितादथो अविदितादधि।।

केन. प्रथम खण्ड 3।।

'वहाँ– परमात्मा में न आँख जाती है, न वाणी जाती है, न ही मन जाता है, न हम जानते हैं, न पहचानते हैं, जैसा कि इसे दूसरे को ज्यों–का–त्यों समझा सकें, क्योंकि वह विदित से अन्य ही है, और अविदित से भी परे है।' ऐसे परमतत्त्व का गूढ़ रहस्य जितना एक अल्पज्ञ की समझ में आ सकता है, उतना भी प्राप्त करने के

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

www.thearyasamaj.org

पृष्ठ 4 का शेष

हमारी पहुँच का....

सर्वान् दुष्टगुणांश्च, परा सुव= दूरे गमय, यद्भद्रम्= यत्कल्याणं सर्वदुःखरहितं सत्यविद्याप्राप्त्याऽभ्युदयानिःश्रेयससुखकर भद्रमस्ति तन्नः= अस्मभ्यम्, आ सुव= आ समन्तादुत्पादय, कृपया प्रापय।

अर्थात् हे सत्यस्वरूप! हे विज्ञानमय! हे सदानन्दस्वरूप! हे अनन्तसामर्थ्ययुक्त! हे परमकृपालो! हे अनन्तविद्यामय! हे विज्ञानविद्याप्रद! हे परमेश्वर! आप सूर्यादि सब जगत् का और विद्या का प्रकाश करने वाले हो तथा सब आनन्दों के देने वाले हो, हे सर्वजगत् उत्पादक सर्वशक्तिमान्! आप सब जगत् को उत्पन्न करने वाले हो, हमारे सब दुःखों और दुष्टगुणों को कृपा करके दूर कर दीजिए, हमसे उनको और हमको उनसे सदा दूर रखिए, और जो सब दुःखों से रहित कल्याण है, जो कि सब सुखों से युक्त भोग है, उसको हमारे लिए सब दिनों में प्राप्त कराइये।

सुख जो दो प्रकार का है– एक जो सत्य विद्या की प्राप्ति में अभ्युदय अर्थात् चक्रवर्तिराज्य, इष्ट मित्र, धन, पुत्र, स्त्री और शरीर से अत्यन्त उत्तम सुख का होना और दूसरा जो निःश्रेयस सुख है कि जिसको मोक्ष कहते हैं। और जिसमें ये दोनों सुख होते हैं उसी को भद्र कहते हैं, उस सुख को आप हमारे लिये सब प्रकार से प्राप्त करिये।

ऋ. भा. भू. ईश्वरप्रा. पृ. 3।।

महर्षि दयानन्द कृत मन्त्रार्थ से स्पष्ट है कि **निःश्रेयस=** ईश्वर, मोक्ष प्राप्ति मे तथा **अभ्युदय=** लौकिक सुख की प्राप्ति में, जो **दुरितानि=** अज्ञान से उत्पन्न राग, क्लेशादि दुर्गुण, दुर्व्यसन व दुःख रूप तमस् हैं उन्हें हटाना नितान्त आवश्यक है।

दुरित प्रकार

यह दुर्गुण, दुर्व्यसन, दुःखरूप अज्ञान दुरित तमस् तीन कारणों से आता है–

1. **दुष्ट ज्ञान–** अनार्ष पुस्तकों, संस्कारहीन व्यक्तियों की संगति से दुष्ट ज्ञान उत्पन्न होता है। वह दुष्ट ज्ञान दुरित= दुर्गुणों की उत्पत्ति करता है।

2. **दुष्ट गमन–** मदिरालय, वेश्यालय, द्यूतालय आदि स्थानों में गमनागमन करने पर दुष्ट गमन कहा जाता है। जिससे दुरित= दुर्व्यसन की उत्पत्ति होती है।

3. **दुष्ट प्राप्ति–** हिंसा, छीना झपटी, लाटरी आदि से धन प्राप्ति, दुष्ट प्राप्ति कही जाती है। जो दुरित= दुःखों को उत्पन्न करती है।

इन दुर्गण, दुर्व्यसन दुःखों से उत्पन्न राग, द्वेष आदि परमात्मा के आनन्द, सुख, कृपा का पात्र व्यक्ति को नहीं बनने देते और न ही परमात्मा के स्वरूप, उसकी उपलब्धि, प्राप्ति होने के स्थान को ज्ञात होने देते हैं। ईश्वर की प्राप्ति के कथन करने वाले जितने भी वेदादि शास्त्र हैं, आप्तोपदेश हैं, वे सभी अनुपयुक्त हो जाते हैं।

राग, द्वेष का दुष्परिणाम

महर्षि कपिल ने राग, द्वेषादि से समन्वित व्यक्ति की विनष्ट दशा को व्यक्त करते हुए लिखा है–

न मलिनचेतस्युपदेशबीजप्ररोहोऽजवत्।

सांख्य. 4/29

अर्थात् **अजवत्=** राजा अज के समान, **मलिनचेतसि=** मलिन चित्त में, **उपदेशबीजप्ररोहः=** उपदेश रूप बीज का अंकुर, **न=** नहीं उगता।

वचन का तात्पर्य स्पष्ट है कि राग आदि से दूषित चित्त में ज्ञान, वैराग्य, ईश्वर प्राप्ति आदि के लिये जो उपदेश, उपाय निर्दिष्ट है उन उपदेशों का चित्त में कोई प्रभाव नहीं होता। ईश्वर प्राप्ति के लिये यम, नियमादि अनुष्ठानों द्वारा अन्तःकरण को निर्मल, दुरितों को हटाना अनिवार्य है।

इस प्रसंग में राजा अज का उदाहरण प्रसिद्ध है। राजा अज अपनी भार्या में अत्यन्त आसक्त थे। भार्या का देहान्त होने पर बहुत विह्वल हो गये और उस आसक्ति से भार्या के अभाव में बहुत दुःखी हुए। वसिष्ठ आदि ऋषियों ने उन्हें विवेक, ज्ञान प्राप्त कराने का बहुत प्रयत्न किया, पर सब व्यर्थ हुआ क्योंकि राजा अज का चित्त विषयासक्ति में आकण्ठ निमग्न था, राग से लिप्त था। विवेक, ज्ञान, ईश्वर प्राप्ति में राग, द्वेषादि दुरित बहुत बड़ी बाधाएँ हैं, जो ईश्वर के सत्य स्वरूप को प्रकट नहीं होने देतीं।

ईश्वर प्राप्ति के इस आवश्यक, अनिवार्य दुरित निवारण उपाय को दृष्टिगत करते हुए उपदेष्टा सन्त महात्माओं के मध्य एक रोचक कथा चर्चित है–

एक बार भिक्षाटन करते हुए एक परिव्राट् भिक्षा हेतु किसी गृह पर जा पहुंचे। उन्होंने अपनी अलख जगाते हुए **भिक्षां देहि** की आवाज लगाई। उस आवाज् का सुनकर गृह देवी द्वार पर आई और सहर्ष भिक्षा डाल दी। भिक्षा देने के पश्चात् उस देवी ने परिव्राट् से उपदेश देने की प्रार्थना की। उपदेश कल दूंगा यह कर परिव्राट् आगे बढ़ गये। अगले दिवस वे परिव्राट् संन्यासी उस देवी के गृह पर पहुँच गये। देवी ने प्रणाम आदि आतिथ्य कर बिठाया और भोजन करने का आग्रह किया। परिव्राट् ने आग्रह स्वीकार करते हुए अपना कमण्डल आगे बढ़ा दिया। गृह देवी ने जैसे ही स्वादिष्ट बनी खीर कमण्डल में डालनी चाही, तभी उसने देखा कमण्डल गोबर से भरा है। वह चौंक कर बोली– बाबा यह कमण्डल गोबर से भरा है, खीर कैसे डालूँ? बाबा चुप रहे। गृह देवी अन्दर गई और वह कमण्डल को साफ करके लाई, ततः उस कमण्डल में खीर रखकर बाबा को दे दी। बाबा कमण्डल लेकर चलने लगे, गृह देवी ने कहा– बाबा आपने उपदेश तो दिया नहीं? बाबा बोले कि उपदेश तो मैं दे चुका। मेरे मैले कमण्डल में आपको खीर डालना उचित नहीं लगा, जब आपने उसे स्वच्छ कर दिया, तभी आपने खीर डाली।

ऐसे ही हमारे मन में जो कमण्डल रूप है, उसमें भी राग, द्वेषादि का गोमय भरा हुआ है, वह परमात्मा के ध्यान में नहीं बैठने देता। उत्तम गुणों, अच्छाइयों को नहीं आने देता। मलिन मन ईश्वर के आनन्द, उसके सर्वज्ञ, सर्वव्यापक निराकारादि स्वरूप एवं उसके प्राप्ति स्थान अन्तःकरण के ज्ञान में बाधक बन बैठता है।

दुरित हटाने का फल

यजुः मन्त्र में निर्दिष्ट ईश्वर प्राप्ति की गहराई को जो ढूँढेगा, वह ही ईश्वर दर्शन का साफल्य प्राप्त कर सकेगा। मन्त्रार्थ की दृष्ट गहराई को **ऋषि=** मन्त्रद्रष्टा, **आख्यान=** कथा प्रसंग मिश्रित कथन द्वारा अभीष्ट विषय प्रतिपादन में प्रीति रखते हैं। महर्षि यास्क ने इस तथ्य को इन शब्दों में व्यक्त किया है–

ऋषेर्दृष्टार्थस्य प्रीतिर्भवत्याख्यानसंयुक्ता।

निरु. 10/1/10

ईश्वर उपलब्धि प्रकरण के कथोपकथन में यह चर्चित परिव्राट कथा अत्यन्त उपयुक्त उदाहरण है।

ईश्वर प्राप्ति के बाधक राग, द्वेषादि निवारण प्रसंग में यह भी जानना उपादेय है कि दुर्गुणादि को छोड़ना ईश्वर प्राप्ति में ही आवश्यक नहीं, अपितु शारीरिक, बौद्धिक, परसहाय्य, चतुरता, सत्यविद्या के प्रकाश, लौकिक व्यवहार आदि की उपलब्धियों में भी दुर्गुण आदि का त्याग आवश्यक है। **महर्षि दयानन्द** ने इस उपादेयता के परिप्रेक्ष्य में **विश्वानि देव** मन्त्र का **ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के ईश्वरप्रार्थनाविषय में** बहुत उत्तम चिन्तन दिया है–

अस्मिन् वेदभाष्यकरणानुष्ठाने ये दुष्टा विघ्नास्तान्प्राप्तेःपूर्वमेवपरासुवदूरंगमय, यच्च शरीरबुद्धिसहायकौशलसत्यविद्याप्रकाशादि भद्रमस्ति तत्स्वकृपाकटाक्षेण हे परब्रह्मन्! नोऽस्मभ्यं प्रापय, भवत्कृपाकटाक्षसुसहायप्राप्त्या सत्यविद्योज्ज्वलं प्रत्यक्षादिप्रमाणसिद्धं भवद्रचितानां वेदानां यथार्थं भाष्यं वयं विदधीमहि। तदिदं सर्वमनुष्योपकाराय भवत्कृपया भवेत्। अस्मिन् वेदभाष्ये सर्वेषां मनुष्याणां परमश्रद्धयाऽत्यन्ता प्रीतिर्यथा स्यात् तथैव भवता कार्यम्।

ऋ. भा. भू. ईश्वरप्रा. पृ. 3।।

महर्षि के इन वचनों का तात्पर्य है कि वेदभाष्य करने के अनुष्ठान में जो दुरित रूप विघ्न हैं, वे प्राप्ति से पहले ही हमसे दूर रहें। वेदभाष्य अनुष्ठान में हमारे शरीर में आरोग्य, बुद्धि, सज्जनों का सहाय, चतुरता और सत्यविद्या का प्रकाश आदि भद्र रूप है वह अपनी कृपा से हे परब्रह्म! प्राप्त कराइये। आपकी कृपा के सामर्थ्य से आप द्वारा रचित जो सत्य विद्या से युक्त, प्रत्याक्षादि प्रमाणों से सिद्ध वेद हैं उनका यथार्थ अर्थ से युक्त वेदभाष्य सुख से मैं कर सकूँ। जो यह वेदभाष्य आपकी कृपा से सभी मनुष्यों के उपकार के लिए होवे। इस वेदभाष्य में सब मनुष्यों की परम श्रद्धापूर्वक अत्यन्त प्रीति होवे, वैसी ही आप कृपा दृष्टि करें।

महर्षि दयानन्द ने इस मन्त्र की उपादेयता समाधि द्वारा भली भाँति समझी हुई थी। राग, द्वेष व कल्मष अपने लिए तथा दूसरे के लिए दोनों के लिए हानिकारक हैं। कल्मष युक्त व्यक्ति न अच्छा कर सकता है और न ही कलुषित व्यक्ति किसी के अच्छे कार्य को अच्छा मान सकता है। अतः महर्षि ने जहाँ परमात्मा से अपने शरीर, बुद्धि, सहाय, कौशल, सत्य विद्या के प्रकाश आदि की प्राप्ति के लिए उसकी कृपा की प्रार्थना की है, वहीं अपने वेदभाष्य के निर्विघ्न अनुष्ठान, परिपूर्णता एवं सभी प्रीति से पढ़ें इसकी भी ईश्वरीय कृपा का सामर्थ्य माँगा है।

महर्षि ने इसी उद्देश्य से अपने वेदभाष्य के प्रति मण्डल, प्रति अध्याय के आरम्भ में एवं ऋग्वेदादिभाष्यभूमिका के आरम्भ में विश्वानि देव मन्त्र का निर्देश किया है। व्यवहारिक सुखों, उपलब्धियों में मन की पवित्रता, राग, द्वेषादि का निवारण नितान्त अपेक्षित कर्म है।

इस प्रकार निष्कर्ष यह हुआ कि ईश्वर की भक्ति, प्राप्ति का केन्द्र ह्रदय गुहा है। उस ह्रदय गुहा को राग, द्वेषादि के अज्ञान, तमस् से बचाना अनिवार्य तथ्य है। सही स्थान एवं राग, द्वेषादि से रहित निर्मल स्थान का परिज्ञान ही ईश्वरीय कृपा, ईश्वर आनन्द प्राप्ति में सहायक बनता है। ईश्वर की उपलब्धि अपने भीतर होती है। हमारी पहुँच का स्थान अपने भीतर है। भीतर किया हुआ प्रयास ही सार्थक होता है। इधर उधर बाहर प्राप्त करने का प्रयास सदा ही असफल रहा है, भटकना व्यर्थ है। अतः हमें अपने को केन्द्र बिन्दु बनाकर ही अपने अन्दर सर्वव्यापक ईश्वर की कृपा, ईश्वरीय आनन्द प्राप्ति का प्रयत्न करना चाहिए, यही वेदादि शास्त्रों का सार कथन है।

पाणिनि कन्या महाविद्यालय,
वाराणसी–10
आर्य कन्या गुरुकुल शिवगञ्ज
जि. सिरोही (राज.) 307027
मो. 9414533951

ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद

● शिवनारायण उपाध्याय

स्वामी दयानन्द सरस्वती की मान्यता है कि ऋग्वेद का उपवेद आयुर्वेद है परन्तु स्वामी जी के बाद उनके शिष्यों में से कई एक ने इस बात को अस्वीकार कर यह कहना ही नहीं लिखना भी प्रारंभ कर दिया कि आयुर्वेद तो अथर्ववेद का उपवेद है। इस प्रकार का विचार सर्वप्रथम संभवतः श्री भगवतदत्त रिसर्च स्कॉलर का रहा, बाद में वैद्य रामगोपाल शास्त्री ने आयुर्वेद पर एक ग्रन्थ ही लिख दिया तथा उसमें आयुर्वेद तो अथर्ववेद का उपवेद है यह बताया। उन्होंने धनुर्वेद को ऋग्वेद का तथा कुछ लोग अथर्ववेद का उपवेद मानते रहे हैं। मैने दोनों वेदों में आयुर्वेद सम्बन्धी मन्त्रों का अध्ययन किया है। दोनों वेदों में आयुर्वेद सम्बन्धी मन्त्र बहुतायत से पाये जाते हैं परन्तु अथर्ववेद में अर्थशास्त्र, समाजशास्त्र, राजनीति, कृषि विज्ञान, युद्ध के अस्त्र–शस्त्र पर उससे भी अधिक वर्णन है। अतः मेरी दृष्टि में स्वामी दयानन्द सरस्वती की मान्यता ठीक है। अथर्ववेद का उपवेद उन्होंने अर्थवेद को स्वीकार किया है यह भी उचित ही है। यद्यपि वर्तमान में अर्थवेद उपलब्ध नहीं है और उसके अभाव में चाणक्य के अर्थशास्त्र को ही विद्वान् लोग उपवेद के रूप में स्वीकार करने लगे हैं। ऋग्वेद में चिकित्सा विज्ञान सम्बन्धी विषयों, जैसे शरीर रचना, और रक्त परिभ्रमण, गर्भाधान एवं प्रसूति विज्ञान, रोग एवं रोगों के कारण रोगों का निदान, रोगाणुनाशन, विष चिकित्सा, शल्य चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, ओषधविज्ञान आदि पर विस्तृत वर्णन हुआ है। आयुर्वेद चिकित्सक की योग्यता तथा शिक्षा पर भी वर्णन है। श्रेष्ठ वैद्य की देख–रेख में उसे रोगों की परीक्षा करना सिखाया जाता है, शल्य चिकित्सा की शिक्षा भी प्रत्यक्ष कर्मा पद्वति द्वारा उसे दी जाती है।

ऋग्वेद में इस विषय की शिक्षा मण्डल 1,5,8 व 10 में विशेष रूप से वर्णित है।

मनुष्यों को योग्य वैद्य के निर्देशन में ओषधियों का ज्ञान प्राप्त करना चाहिए।

योश्च दमुप शृण्वन्तियाश्च दूरं परागताः। सर्वाः सङ्गत्यं वीरुधोऽस्यै सं दत्त वीर्य। ऋ 10.97.21

(याः च) जिन्हें लक्ष्य (इदं) यह विशेष गुण वचन (उपशृण्वन्ति) शिष्य आदि गुरुजनों से सुनते हैं और (याः च दूरं परागताः) जो दूर–दूर तक फैली हुई हैं (सर्वाः वीरुधः सः सत्या) वे सब ओषधियाँ मिलकर (अस्मै) इस रोग युक्त काया को (वीर्य संदत्त) बल दें।

ऋग्वेद के पहले मण्डल में ही शल्य चिकित्सा एवं विष चिकित्सा का विस्तृत वर्णन हुआ है। ऋ. 1.116.15 में शल्य चिकित्सा के सम्बन्ध में कहा है–

चरित्रं हि चेरिवाच्छेदि पर्णमाजा खेलस्य परितवभ्याम्। सद्यो जङ्घामायसी विश्पलायै धने हिते सर्त्तवे प्रत्यधत्तम्। (आजा) युद्ध में या (खेलस्य) खेल के कारण (परितवभ्यायाम्) बीमारी में (चरित्रम्) चलने का साधन (पैर) (हि) निश्चय (अच्छेदि) टूट जाय, (अश्विनो) हे चिकित्सको! (सद्यः) तत्काल (विश्पलायै) भागने या भगाने के लिए (धने) युद्ध या धन के लिए (हित सत्तवे) हित साधन के कार्य में (चलने के लिए) (आयसी) लोहे आदि धातु की बनी (जङ्घा) (प्रति अधतम्) फिर से लगा दें (वेः पर्णम् इव) पक्षी के पंख की तरह।

आगे ऋग्वेद मण्डल एक सूक्त 191 में ऋचा 1 से 16 तक में विषचिकित्सा के विषय में विस्तृत वर्णन है।

पहली ऋचा में उल्लेख है कि कई छोटे–छोटे विषधारी तो देखने में भी नहीं आते परन्तु वे मनुष्यों पर गिर कर बार–बार उनको काटते रहते हैं जैसे मच्छर, डाँश आदि।

दूसरे मंत्र में टीके लगाने के विषय में बताते हुए कहा गया है कि वह बीमारी हो या न हो उस बीमारी के अल्पजीवाणु शरीर में पहले से ही करा दें तो वह जन्तु यदि मनुष्य को काट भी ले तो उसका विष काम नहीं करेगा जैसे माता का टीका, पागल कुत्ते के काटने का टीका।

अगले मन्त्र में कहा गया है कि जो नाना प्रकार के तृणों में कहीं स्थान आदि के लोभ से और कहीं उन तृणों के गन्ध लेने को अलग अलग छोटे विषधारी छिपे रहते हैं और अवसर पाकर मनुष्यादि प्राणियों की पीड़ा पहुँचाते हैं। अगली ऋचा में कहा गया है कि जैसे नाना प्रकार के जीव निज निज सुख भोग के लिये स्थान को प्रवेश करते है जैसे विषधर जीव जहाँ तहाँ पाए हुए स्थानों में प्रवेश करते हैं।

एत उत्ये प्रत्यदृश्रन्प्रदोषं तस्कराइव। अद्दष्टा विश्वदृष्टाः प्रतिबुद्धा अभूत्तम। ऋ.1.191.5

भावार्थ– इस मन्त्र में उपमालंकार है। जैसे चोरों में डाकू देखे और न देखे होते हैं वैसे मनुष्य नाना प्रकार के प्रसिद्ध–अप्रसिद्ध विषधारियों के विषों को जानें।

अगली ऋचा में कहा गया है कि जो विषधारी प्राणी हैं वे शान्त्यादि उपायों और ओषध्यादिकों से विषनिवारण करने चाहिए। अगली ऋचा में उल्लेख है कि मनुष्यों को उत्तम यत्न के साथ शरीर और आत्मा को दुःख देने वाले विष दूर करने चाहिए जिससे पुरुषार्थ बढ़े। दसवीं ऋचा में बताया गया है कि विषहारी वैद्यजन बड़ी–बड़ी ओषधियों से विष को दूर करते हैं।

अगले मन्त्र में वैद्य को सलाह दी गई है कि वह विष हरने वाले पक्षियों को पाले। बारहवीं ऋचा में कहा गया है कि वैद्यगण ऐसी चिड़ियों से परिचित हैं जो जहर को चूस लेती हैं, विष का उन पर भी कोई प्रभाव नहीं होता और रोगी भी बच जाता है। अगली ऋचा. 1.191.15 में वर्णन है कि कुछ ऐसे रत्न हैं जो रोगी को विष मुक्त कर देते हैं। नेवला तथा मोरनियाँ भी विषहरण कर लेते हैं।

शरीर रचना के विषय में मण्डल 8व सूक्त 10 में पर्याप्त वर्णन हैं।

त्वमेतदधारयः कृणासुरोहिणीषुच। परुषणीपुरशत् पथः। ऋ.8.93.13

भावार्थ– शारीरिक क्रियाएँ वात नाड़ियों द्वारा उत्पन्न होती हैं। इनके भीतर एक तरल पदार्थ और ऊपर सूत्र तन्तु होता है। प्रत्येक तन्तु के दो सिरे होते हैं– एक सिरा मस्तिष्क में और दूसरे सूत्र के द्वारा भिन्न–भिन्न अंगों में होता है। ये दो प्रकार के होते हैं– एक के द्वारा इन्द्रियों की अनुभूति मस्तिष्क तक पहुँचती है और दूसरे सूत्र के द्वारा मस्तिष्क की प्रेरणाएं अंगों तक पहुँचती है और उष्ण तरल पदार्थ इनके जीवित होने का लक्षण है। इस प्रकार मस्तिष्क की इन दो प्रकार के वात सूत्रों के द्वारा शरीर के चैतन्य का धारक बना रहता है।

वियदहेरधत्विषौविश्वे देवासो अक्रमुः । विदन्मृगस्य ताँ अमः। ऋ.8.93.14

भावार्थ– मस्तिष्क सभी अंगों को इतना बल देता है कि कुटिल भावनाए अथवा दुर्बलता, रोगादि उपसर्ग उसको पीड़ित नहीं करते। रोग अथवा अन्य घोतक उपसर्गों से बचने के लिए चेतना का केन्द्र मस्तिष्क बलवान होना चाहिए। आदु मे निवरो भूवदूवृत्रहादिष्ट पौस्यम्। अजात शत्रुरस्तृतः। ऋ.8.93.15

इस ऋचा में कहा गया है कि मनुष्यों का अपना मनोबल ही हैं जो उसकी कामनाओं की पूर्ति एवं जीवन में सफलता दिला सकता है। बलवान मन की शक्ति के विषय में वर्णन है। जो बलशाली मनः शक्ति स्वयं दुर्भावनाओं का शिकार नहीं हुई होती, वह अपने सुमार्ग की सब विघ्न बाधाओं को नष्ट हुई शरीरादि को बलप्रदान करती है। उसी को दृढ़ बनाना चाहिए।

अभी हमने मस्तिष्क की कार्य प्रणाली के विषय में जाना एवं मन की शक्ति पर विचार किया है अब हम शरीर रचना पर वेद के विचार जानने का प्रत्येक करते हैं।

ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 163 में एक वैद्य शरीर के विभिन्न अंगों के रोगों का वर्णन करता हुआ पूरे शरीर की रचना बता रहा है।

अक्षीभ्यां ते नासिकाभ्यां कृर्णाभ्याम् छुबुकादधि। यक्ष्मं शीषण्यं मस्तिष्काज्जिह्वाया हि वृहामि ते। ऋ.10.163.1

ऋचा में आँख, नासिका, कान, ओठ, ठोड़ी, मस्तिष्क, जिह्वा का स्पष्ट उल्लेख है।

ग्रीवाभ्यस्त उष्णिहाभ्यः कीकसाभ्यो अनूक्यात्। यक्ष्मं दोषण्य मंसाभ्यां बाहुभ्यां वि वृहामि ते। ऋ.10.163.2

इस ऋचा में गर्दन की नाड़ियों, उर्ध्व धमनियों, हड्डियों और संधियों, हाथों और कन्धों का स्पष्ट उल्लेख है।

आनभ्यस्ते गुदाभ्यो वनिष्ठो हृदयादधि यक्ष्ममतस्नाभ्यां थक्रः प्लशिभ्योनि वृहामिते। ऋ. 10.163.3

इस ऋचा में आंतों, गुदाओं, स्थूलआंत, हृदय, दोनों गुर्दों, यकृत और तिल्ली आदि अङ्गों का स्पष्ट उल्लेख है।

उकथां ते अष्टीवद्भयां पार्ष्णिभ्यां प्रपदाभ्याम्।

यक्ष्मं श्रोणिभ्यां भासदाद्भंससोवि वृहामि ते। ऋ.10.163.4

इस ऋचा में जंघाओं, गोडों, एड़ियों, पंजों, नितम्बभागों, कटिभागस्थ उपस्थ प्रदेश का स्पष्ट उल्लेख है।

शेष अंगों का उल्लेख अगली दो ऋचाओं में हुआ है।

अब हम गर्भाधान एवं प्रसूति विज्ञान पर विचार करते हैं। ऋग्वेद 10.85 ऋचा 28 में गर्भाधान का समय बताते हुए कहा गया है कि पत्नी को मासिक धर्म होता है। गृहस्थ कार्यों में आसक्ति होने लगती है, पति शारीरिक बन्धनों में बँधने लगता है तब गर्भाधान का समय आता है। आर्तव समय में संभोग रोगोत्पादक होता है यह इस सूक्त की 34 वीं ऋचा में उल्लिखित है। पति–पत्नी आपस में कैसे मिले रहें यह निम्न ऋचा बताती है–

समजन्तु विश्वे देवाः समापो हृदयानि नौ। संमातरिश्वासंधाता समुदेष्टी दधातु नौ। ऋ. 10.85.47

भावार्थ– हे समस्त विद्वज्जन। आप देखें हम दोनों का हृदय मिले हुए जल के समान है। वायु, सूर्य, सरस्वती सभी हम दोनों के हृदय को समान करें।

गर्भधारण के बाद गर्भस्थ शिशु की रेखदेख कैसे हो इसका वर्णन भी ऋ.5.78.9 में हुआ है।

अस्वस्थ होने पर बीमारी के

शेष पृष्ठ 11 पर ☞

www.thearyasamaj.org

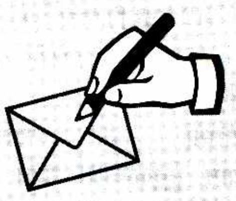

पत्र/कविता

"सूर्या सावित्री-दाम्पतिक धात्री"

रुक्मप्रस्तरण वह्ये विश्वा रूपाणि बिभ्रतम्।
आरोहत् सूर्या सावित्री बृहते सौभगाय कम्।।

(अथर्व, 14.2.30)

मैं तेरी ध्वनि प्रणव गुञ्जिनी, तू मेरा सरगम सम्मान।
मैं तेरी श्रुति सवित संगिनी, तू मेरा सूरज श्रीमान।।

बनते जगरूप सलोने हैं।
बिछ जाते स्वर्ण बिछौने हैं।

चल पड़ता जय रथ गृहस्थ का,
खिल जाते खेल खिलौने हैं।
मैं तेरी लय सुधा अंगिनी, तू मेरा वसुधा परिधान।
मैं तेरी श्रुति सवित संगिनी, तू मेरा सूरज श्रीमान।।

सावित्री प्रेरणा प्रदाता।
सावित्री प्रोत्साहन दाता।
यही सूर्य की अन्तर आभा,
सावित्री संसृति विज्ञाता।
मैं तेरी ऋत् रश्मि रंगिनी, तू मेरा योगिक अभिधान।
मैं तेरी श्रुति संवित संगिनी, तू मेरा सूरज श्रीमान।।

बाह्म रूप सूरज दमकाता।
अन्तर ज्योति मुझी से पाता।
आत्म–देह मिल एक गेह हों,
बनते सुष्टि समोन्नति दाता।
मैं तेरी सौभाग्य अञ्जिनी, तू मेरा भारूवर भगवान।
मैं तेरी श्रुति सवित संगिनी, तू मेरा सूरज श्रीमान।।

देवनारायण भारद्वाज 'देवातिथि'
'वरेण्यम्' अवन्तिका (प्रथम) रामघाट मार्ग,
अलीगढ़ 20 2001 (उ.प्र.)

क्या राष्ट्रगान से 'सिन्ध' शब्द हटाने की मांग अराष्ट्रीय नहीं है?

मुम्बई उच्च न्यायालय ने हाल में एक निर्णय में कहा कि हमारे राष्ट्रगीत "जन गण मन....." में 'सिन्ध' शब्द का प्रयोग सम्भवतः एक त्रुटि है और यद्यपि वह अनायास या अनजाने में हुई है पर उसे सम्बद्ध केन्द्रीय मंत्रालयों द्वारा सार्वजनिक उपयोग के लिए सुधारना चाहिए। उच्च न्यायालय की एक खण्डपीठ में न्यायमूर्ति रंजना देसाई और न्यायमूर्ति आर.जी. केलकर ने हाल में पुणे के श्री. कान्त मालुश्ते की एक जनहित याचिका पर निर्णय देते हुए कहा कि राष्ट्रगान में प्रयुक्त 'सिन्ध' शब्द को बदलकर 'सिन्धु' कर देना चाहिए क्योंकि 'सिन्ध विभाजन के बाद भारत का हिस्सा नहीं रहा है। यह सुझाव उन्होंने केन्द्रीय गृह मंत्रालय, सूचना और प्रसारण व संस्कृति मंत्रालय के विचारार्थ भेजा।

क्या हमारी संविधान निर्मात्री सभा और संविधान के अन्तिम प्रारूप के सर्जक डॉ. बाबा साहेब अम्बेडकर की नजर से यह 'त्रुटि' बच निकली थी अथवा वे राष्ट्रगान में अन्तर्निहित हर शब्द के मन्तव्य से अनभिज्ञ थे? शायद, कभी नहीं! क्या राष्ट्रगान में देश के विशाल मानचित्र के सभी प्रदेशों या क्षेत्रों के नामों को सूचीबद्ध करना कोई बाध्यता या अनिवार्यता थी? इस तर्क से क्या कश्मीर या बाद में उत्तर–पूर्व के अरुणाचल या सिक्किम आदि सीमान्त प्रदेश भी समय–समय पर समाविष्ट होने चाहिए थे?

बहुत से लोगों का मत है कि 'सिन्ध' शब्द को 'सिन्धु' से बदलने का विचार ही राष्ट्रद्रोह का परिचायक है। इसके पहले भी सन् 2005 में संजीव भटनागर ने सर्वोच्च न्यायालय में एक जनहित याचिका दायर की थी जिसमें 'सिन्ध' भारतीय प्रदेश न होने के आधार पर "जन–गण–मन" से निकालने की मांग की थी जिसे देश में व्यापक रूप से अराष्ट्रीय माना गया था। इस याचिका को 13 मई 2005 को सर्वोच्च न्यायाधीश आर.सी. लाखोटी की अध्यक्षता वाली खण्डपीठ ने सिर्फ खारिज ही नहीं किया था बल्कि संजीव भटनागर की याचिका को छिछली और बचकानी मुकदमेबाजी मानते हुए उस पर रु. 10,000 का आर्थिक दण्ड भी लगाया था।

जहाँ तक पुणे के सेवानिवृत प्रोफेसर श्रीकान्त मालुश्ते की 9 अगस्त 2011 को दायर की गई इसी विषय की याचिका का प्रश्न है आज इस प्रश्न को फिर उछाल कर राजनीतिक विवाद खड़े करने का मन्तव्य मात्र देश की प्रभुसत्ता पर येन केन प्रकारेण संशय प्रकट करने के अलावा क्या कुछ और हो सकता है? आज पिछले 64 वर्षों से 'कश्मीर', जो समस्त भारत का 'सिरमौर' है, उसे जुड़वाने के लिए आज तक किसी तार्किकता और वैधता के प्रश्न पर किसी कथित संवेदनशील बुद्धिजीवी को अब तक यह क्यों नहीं सूझा? दूसरी ओर 'सिन्ध' जो हमारी राष्ट्र की संस्कृति से गत 5000 वर्षों से अविच्छिन्न रूप से जुड़ा है, उस पर संशय प्रकट किया जा रहा है?

राष्ट्रगान से 'सिन्ध' शब्द निकालने का मुद्दा क्या मात्र सिन्धी समुदाय को आहत और उद्वेलित करने वाला है, सारे भारतीयों को नहीं? एक राष्ट्रीय पत्र ने कुटिलतापूर्वक ऐसा भी लिखा था। संजीव भटनागर की जनवरी 10, 2005 की जनहित याचिका द्वारा इस मांग द्वारा यह दावा किया गया था कि वर्तमान भौगोलिक सीमाओं की परिभाषा पर यह एक बौद्धिक दृष्टि है पर इसके अन्तर्निहित परिणामों को जानबूझ कर अनदेखा किया गया था। एक समय समस्त भारतीय उपमहाद्वीप ही नहीं दूर सुदूर तक सारे दक्षिण पूर्व एशिया के देशों में भारतीय संस्कृति व सभ्यता के प्राण बसते थे जिसे ब्रिटिश शासन की प्रशासनिक इकाइयों में उन्होंने स्वयं पिरोया था। श्रीलंका, बर्मा, पूर्वोत्तर व पश्चिमोत्तर भारत के कुछ क्षेत्र क्षेत्र यद्यपि उन्होंने पहले ही छोड़ दिए थे, पर भारत उन्हें नहीं भूल सकता है।

देश विभाजन के बाद सिन्धी अपने ही देश में पराए हो गए थे। रेडक्लिफ एवार्ड के परिणामों पर कांग्रेसी नेताओं ने उस समय कभी गम्भीरता से नहीं सोचा था और उसका परिणाम हम आज तक भुगत रहे हैं। 1947 में आचार्य कृपलानी, जो सिन्धी थे, कांग्रेस के अध्यक्ष थे। दूसरे बड़े नेता जैसे चोइथ राम गिडवानी आदि नेहरु जी के मन्तव्य की कमी पूरी तरह नहीं समझ सके थे। जब गिडवानी ने इस पर खुलकर प्रतिरोध जताया तब संविधान निर्मात्री सभा ने सन् 1950 में उजड़े हुए सिन्धियों की सांस्कृतिक पहचान को बरकरार रखने के लिए राष्ट्रगीत में सिन्ध शब्द को बनाए रखने का निर्णय लिया था। जिस तरह इज़राइल ने सदियों तक अपनी मातृभूमि को खो दिया था पर उनके मन में अपनी जड़ों की ओर लौटने की ललक सदैव बनी रही। उसी तरह अपनी खोई मातृभूमि को याद रखने की अनुमति कदाचित् संविधान सभा ने भी दी थी। अब यह भी खतरे में पड़ गई है। हर भारतीय चाहे वह सिन्धी समुदाय का हो या न हो, यह महसूस करता रहा है कि राष्ट्रगीत के शब्द मात्र काव्यात्मक अभिव्यक्ति का रूप ही नहीं प्रत्युत भारत की अखण्ड आत्मा का परिचायक है। इसे आज किसी नए राजनीतिक खेल का मुद्दा नहीं बनाया जा सकता है।

अपनी मातृभूमि को 64 वर्ष पहले खो देने के बाद आज इस नए भावनात्मक प्रतिघात की सबसे बड़ी प्रतिक्रिया स्वयं राम जेठमलानी के इस वक्तव्य में सिमट गई है– यह याचिका मूखर्तापूर्ण, सतही और स्वप्रचार के लिए की गई है क्योंकि सिंध एक भौगोलिक इकाई को ही परिधि से ऊपर रहा है। जहाँ के इतिहास और सभ्यता व संस्कृति का फैलाव आज भी 'जीए सिन्ध' आंदोलन के रूप में सीमा के उस पार भी है। पाकिस्तानी शासन इस आन्दोलन को सदैव शक से देखता रहा है। स्वातंत्र्य–वीर सारवकर की कृति 'हिन्दुत्व' में सिन्धु, सप्तसिन्धु और सिन्धु सौवीर शीर्षक अध्याय में जो उन्होंने 1923 में लिखी थी वह आज

शेष पृष्ठ 11 पर

☞ पृष्ठ 7 का शेष

तत्त्व-ज्ञान

लिए जिस ध्यान और समाधि–अवस्था तक पहुँचना आवश्यक है, उसका वर्णन भी इस ग्रन्थ में कर दिया गया है।

जब यही अवस्था मानव को परमानन्द अनुभव कराती है, तब साधक शरीर को तो दुःख–सुख भोगने का साधन समझता है और आत्मा को आनन्द पाने का पात्र। जब तक शरीर है, तब तक तो पूरी शान्ति मिल ही नहीं सकती। जैसा कि छान्दोग्य के ऋषि ने भी कहा है:

न ह वै सशरीरस्य सतः
प्रियाप्रिययोरपहतिरस्ति।

'देह–धारण की अवस्था में प्रिय–अप्रिय विषयों के ग्रहण से होने वाली व्याकुलता कभी भी नहीं मिटती।'

देह धरे को दण्ड है, सब काहू को होय।
ज्ञानी भुगते ज्ञान सों, मूरख भुगते रोय।।

इस अवस्था तक पहुँचने के लिए, जिस मनुष्य का एक क्षण भी मनोनिग्रह, वासनाक्षय, तत्त्वज्ञान की प्राप्ति के साधन में व्यतीत होता है, वह बड़ा भाग्यशाली है और अपने कुल तथा देश के लिए भी कल्याणकारी है क्योंकि ऐसे ही महात्मा दुःखी दुनिया को सुखी बनाने की सामर्थ्य रखते हैं, कोरे वैज्ञानिक या विद्याभिमानी नहीं।

भारत के गीत स्वर्ग में

सारे संसार को इस अमृत से तृप्त करना आर्य का कर्त्तव्य है, परन्तु भारत देश को तो इसकी यह खोई हुई सम्पत्ति अति शीघ्र मिलनी चाहिये, क्योंकि यह भारत देश ऐसा है, जिसके गीत स्वर्ग में भी गाये जाते हैं। विष्णु पुराण में लिखा है:

गायन्ति देवाः किल गीतकानि, धन्यास्तु
ते भारतभूमिभागे।
स्वर्गापवर्गस्य च हेतुभूते, भवन्ति भूयः
पुरुषाः सुरत्वात्।।

'स्वर्ग में देवता भी ये गीत गाते हैं कि वे पुरुष धन्य हैं, जो भोग तथा मोक्ष की साधना–भूत भारत–भूमि में जन्म लेते हैं।'

सो आप भी धन्य है, जिनका जन्म भारत–भूमि में हुआ है। ऐसे मधुर अवसर को पाकर भी लाभ न उठाया, तो पश्चात्ताप ही होगा। कुछ समय निकालकर इसका एक स्वाद चखकर तो देखिये और यह अटल सत्य सामने रखिये कि:

कहे नानक तत्त्व विचारा।
प्रभु सिमरन बिन नहीं निस्तारा।।

क्योंकि उसी शान्त, गंभीर, निर्मल, ज्योतिःस्वरूप और परमतत्त्व परमात्मा को जानकर ही दुःखों से छुटकारा हो सकता है :

सूक्ष्मातिसूक्ष्मं कलिलस्य मध्ये विश्वस्य
स्रष्टारमनेकरूपम्।
विश्वस्यैकं परिवेष्टितारं ज्ञात्वा शिवं
शान्तिमत्यन्तमेति।।

श्वेताश्वतरोपनिषद् 4।14।।

'जो सूक्ष्म से अतिसूक्ष्म, गहन, गम्भीर, संसार के मध्य में, विश्व का बनानेवाला, अनेकों रूपोंवाला, अकेला सारे विश्व को घेरनेवाला है, उस शिव को जानकर ही मनुष्यअत्यन्त शान्ति को प्राप्त होता है।'

यही निष्कर्ष सारे अनुभवी तपस्वियों, योगियों, विद्वानों तथा भक्तों ने निकाला है।

इस पुस्तक के तैयार करने में कितने ही ग्रन्थों से सहायता ली गई है, जिनका वर्णन यथास्थान साथ–साथ कर दिया है। उनके रचयिताओं का मैं आभारी हूँ।

गंगातीर–नाथ–कुटीर
तत्त्वज्ञानियों का सेवक–

☞ पृष्ठ 9 का शेष

ऋग्वेद का उपवेद...

रोगाणुओं का नाश कैसे किया जाए इसका वर्णन भी ऋग्वेद में कई स्थलों पर हुआ है। प्राकृतिक चिकित्सा में धूप, जल और वायु चिकित्सा का भी वेद में वर्णन हुआ है। हम ऋग्वेद में से एक मन्त्र देते हैं।

यो वचा विवाचो मृतवाचः पुरु सहस्राशिवा जधान। तत्तदिदस्य पौस्यं गृणीमसि पितेव यस्तविषीं वावृधे शवः। ऋ.10.23.5

हम इस इन्द्र के उन उन कार्यों की प्रशंसा करते हैं जिनमें वह विविध प्रकार के अकल्याणकारक कृषि कीटों आदि को बिजली की कड़क से नष्ट कर देता है और पुत्र को पिता के समान जगत् के बल और शक्ति को वृष्टि से बढ़ाता है।

रोग के निवारण के लिए ऋग्वेद मण्डल 10 सूक्त 58,97,105,112,137,145,161,163,186 में कई ऋचाओं के द्वारा नाना ओषधियों का वर्णन है। इन सबका वर्णन इस लेख में किया जाना संभव नहीं है। केवल सूक्त 58 में मनोवैज्ञानिक ढंग से कुछ रोगों को दूर किये जाने का वर्णन है इस सूत्र में कुल 12 ऋचाएँ हैं। उनमें रोगी की मनः चिकित्सा के विषय में ही बताया गया है। वैद्य मनोरोगी (पागल) से नाना प्रकार से बातचीत कर उनके मन को नियन्त्रित करता है।

सत्ते यमं वैवस्वतं मनो जगाम दूरकम्। तत्त आ वर्तयामसीह क्षयाय जीवसे। ऋ.10.58.1

भावार्थ– वैद्य रूग्ण मनुष्य से कहलाता है कि हे मनुष्य तेरा मन जो दूर तक जाता है जो जगन्नियन्ता प्रभु की प्राप्ति का साधन है उसे इस शरीर में रहने और जीने के लिये व्याधि के चक्र से वापस लौटाता अर्थात् स्वस्थ करता हूँ।

सूक्त 97 को प्रारंभ करते हुए कहा गया है कि ओषधियों का प्रादुर्भाव तो मनुष्य के उत्पन्न होने से पूर्व ही हो गया था। या ओषधीः पूर्वा जाता देवेभ्यस्त्रियुगं पुरा। मनैनुबभ्रूणामहं शतं धामानि सप्त च। ऋ. 10.97.1

भावार्थ– जो ओषधियाँ मनुष्यादि से पुरातन हैं और बसन्त, वर्षा, शरद में पैदा होने वाली हैं, उन भूरे रंग के पत्तों वाली ओषधियों के सात सौ सात नामों वाली, एक सौ सात स्थानों में होने वाली और शरीर के 107 मर्म स्थानों पर प्रयुक्त की जाने वाली ओषधियों को मैं भिषग् (वैद्य) जानता हूँ। इस विवेचन से यह सिद्ध होता है कि ऋग्वेद में आयुर्वेद सम्बन्धी वर्णन बहुत विस्तार से किया गया है।

73 शास्त्री नगर, दादाबाड़ी कोटा।

☞ पृष्ठ 10 का शेष

क्या राष्ट्रगान से 'सिन्ध' ...

भी प्रासंगिक है।

सिन्धु घाटी की सभ्यता के क्षेत्र का विस्तार और उसकी नागरी संस्कृति, उसकी दशमलव प्रणाली, पंचाग पद्धति, मातृ एवं शक्ति पूजा का वर्णन मुस्लिम इतिहासकारों ने भी किया है। विद्रोही कवि शेख अयाज अब्दुल वाहिद आरेसर, अमर जलील और इमदाद हुसैनी आदि ने बौद्धिक स्तर पर सदैव पाकिस्तान को चुनौती देकर अपने हिन्दू अतीत को स्वीकार किया है। डॉ. नजम अब्बासी ने तो यह तक लिखा है कि अरब सागर नाम भी गलत है। उसे सिन्ध सागर कहना चाहिए क्योंकि सिन्ध का भूभाग हिन्दुस्तान की धरती से जुड़ा है। पाकिस्तान ने सिंध की स्वाधीनता की बलि अपनी महत्वाकांक्षा के कारण चढ़ा दी थी।

पाकिस्तान के विद्रोही लेखक, चिन्तक एवं 'जीए सिन्ध' आन्दोलन के प्रवर्तक अब्दुल वाहिद आरेसर, जो पाकिस्तानी जेल में दशकों तक रहे, लिखते हैं– "हम 55 वर्षों से पाकिस्तानी और 15 हजार वर्षों से सिन्धी हैं। हम पाकिस्तानी नहीं थे, पर सिन्धी थे, मुसलमान नहीं थे, पर सिन्धी थे। सिन्धी होने का प्रमाण पत्र हमें सिन्ध की धरती ने दिया है।

हमें भूलना नहीं चाहिए संजीव भटनागर की 'सिन्ध' शब्द हटाने वाली जनहित याचना पर सर्वोच्च न्यायालय ने मई 2005 में निर्णय दिया था तब तक केन्द्रीय सरकार के शपथ पत्र के साथ साथ दर्जनों विद्वानों और बुद्धिजीवियों ने एक मत से कहा था कि गुरुदेव रवीन्द्र नाथ ठाकुर के इस राष्ट्रगान में किसी तरह का बदलाव अनुचित है और वह उनका अपमान भी है। यह गान सर्वप्रथम भारतीय राष्ट्रीय कांग्रेस के कोलकाता अधिवेशन में 27 दिसम्बर, 1911 में गाया गया था। सुभाष चन्द्र बोस ने भी इसी गीत को आजाद हिन्द फौज–आई. एन.ए. के राष्ट्रगीत के रूप में थोड़े परिवर्तन से पहले ही स्वीकार किया था। वह 'भारत नाम सुभागा'– शीर्षक से सुभाष बाबू ने 21 अक्टूबर 1943 में जब आजाद हिन्द की 'प्रावीजनल' सरकार की घोषणा की थी तभी स्वीकृत किया था और इसमें भी पंजाब, सिन्ध, गुजरात आदि प्रदेशों का उल्लेख था।

इतना सब होने पर भी जो सन् 2005 में सर्वोच्च न्यायालय ने कहा था उसके विपरीत मुम्बई उच्च न्यायालय आज फिर उसी विवाद को नये सिरे से क्यों प्रारंभ करना चाहता है, यह विस्मयजनक प्रतीत होता है। हमारे देश का दूसरा सरकारी और जनता का सर्वाधिक लोकप्रिय गीत है– सारे जहाँ से अच्छा हिन्दोस्तानां हमारा! यदि कल कोई कहे कि इसकी शब्दावली आक्रामक और अंधराष्ट्रवादी है और इसलिए इस पर सरकारी कार्यक्रमों या सैन्यबलों के वृन्दवाद आदि पर प्रतिबंध लगना चाहिए तब क्या न्यायालय इसे भी राष्ट्रद्रोही मानसिकता की उपज नहीं मानेगा?

विश्व कवि रवीन्द्रनाथ ठाकुर की देश का गुणगान करने वाली अमर रचना फिर मुकदमेबाजी का शिकार बनेगी यह दुर्भाग्यपूर्ण है। राष्ट्र और राज्य एक नहीं होते हैं– वे भूसांस्कृतिक श्रद्धा होते हैं। सिन्ध एक परम्परा है; सिन्ध हिन्द है; हिन्द, सिन्ध है! प्रश्न कई बार निर्णीत हो चुका है। फिर इस याचिका की सुनवाई का आज क्या मतलब बचा है?

हरिकृष्ण निगम
ए–1002, पंचशील हाइट्स
महावीर नगर, कान्दिवली (प)
मुम्बई – 400067
मो. : 9820215464

www.thearyasamaj.org

Delhi Postal R. No. D.L. (ND)-11/6066/2012-14
अग्रिम अदायगी के बिना भेजने का लाइसैंस नं. U(C)-103/2012-14
POSTED AT N.D.P.S.O. ON 02-03 /10/2013
रजिस्ट्रेशन नं. आर० एन० आई० 39/57

डी.ए.वी. पटियाला में हुआ श्रावणी पर्व तथा संस्कृत दिवस का आयोजन

आर्य युवा समाज एवं संस्कृत विभाग डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल पटियाला द्वारा आयोजित ''श्रावणी पर्व एवं संस्कृत दिवस समारोह'' में मुख्यातिथि के रूप में बोलते हुए पंजाबी विश्वविद्यालय के पूर्व संस्कृत विभागाध्यक्ष डा.इन्द्र सिंह ने कहा कि संस्कृत एवं भारतीय संस्कृति के प्रचार प्रसार में आर्य समाज एवं डी.ए.वी. संस्था का महत्वपूर्ण योगदान रहा है।

कार्यक्रम का शुभारम्भ वैदिक यज्ञ से हुआ जिसमें पवित्र वेदमन्त्रों का उच्चाररण करते हुए विद्यालय के बच्चों अध्यापकों व अन्य अतिथि महानुभावों ने मानव कल्याण की कामना से यज्ञाग्नि में आहुतियाँ प्रदान की।

कार्यक्रम की अध्यक्षता करते हुए विद्यालय के प्राचार्य श्री एस. आर. प्रभाकर जी ने अपने उद्बोधन में कहा कि ''संस्कृत भाषा विश्व की प्राचीनतम भाषा ही नहीं बल्कि यह एक पूर्ण वैज्ञानिक भाषा भी है। प्रत्येक भारतीय को संस्कृत भाषा का अध्ययन अवश्य करना चाहिए।''

समारोह के विशिष्ट अतिथि डा. महेश गौतम जी ने संस्कृत के अध्ययन-अध्यापन के लिए डी.ए.वी. विद्यालय की प्रशंसा की। उन्होंने कहा की सरकार द्वारा संस्कृत एवं हिन्दी भाषा की निरन्तर उपेक्षा की जा रही है। जो देश व समाज के लिए हितकर

नहीं है।

इस अवसर पर मन्त्रोच्चारण प्रतियोगिता एवं सूक्तिलेखन प्रतियोगिता का आयोजन किया गया जिसमें पचास बच्चों ने भाग लिया।

डी.ए.वी. सैक्टर-49 फरीदाबाद में नैतिक शिक्षा दिवस

आर्य युवा समाज के तत्वावधान में डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल सैक्टर-49 फरीदाबाद में नैतिक शिक्षा दिवस का आयोजन किया गया। जिसमें मुख्य वक्ता के रूप में आर्य समाज की प्रसिद्ध विदुषी अंजली आर्या को आमंत्रित किया गया। कार्यक्रम की अध्यक्षता फरीदाबाद के प्रसिद्ध आर्य नेता एवं डी.ए.वी. स्कूल के एल.एम.सी. सदस्य डॉ. सत्यदेव जी ने की थी। कार्यक्रम में आर्य समाजों के सदस्यों और अभिभावकों को भी आमंत्रित किया गया था। कार्यक्रम का प्रारम्भ विद्यालय के छात्रों द्वारा ईश प्रार्थना के साथ हुआ। मुख्य वक्ता के रूप में बोलते हुए अंजलि आर्या जी ने छात्रों को उच्च शिक्षा के साथ-साथ श्रेष्ठ मानव बनने के लिए प्रेरित किया और जीवन में हमेशा पुरुषार्थ के माध्यम से उन्नति

करते हुए ऐसे कार्य करने की प्रेरणा दी जिससे अभिभावकों का, विद्यालय का और राष्ट्र का सम्मान बढ़ सके। अध्यक्षीय भाषण में डॉ. सत्यदेव जी ने भी छात्रों को भाग्य पर निर्भर न रहते हुए परिश्रम के बल पर आगे बढ़ने की प्रेरणा दी। अंत में विद्यालय के प्रधानाचार्य ने सभी आगंतुकों का धन्यवाद किया तथा विद्यालय में इस तरह के कार्यक्रमों का आयोजन कराने का आश्वासन दिया। शान्ति पाठ के साथ कार्यक्रम का समापन हुआ।

डी.ए.वी. घुमारवीं ने मनाया संस्कृत दिवस

डी.ए.वी. पब्लिक स्कूल घुमारवीं (हि.प्र.) में संस्कृत दिवस बड़ी धूमधाम से मनाया गया। छात्रों ने सब भाषाओं की जननी संस्कृत भाषा के महत्व पर प्रकाश डाला। एक लघु-नाटिका का मंचन किया गया साथ ही एक मंत्रोच्चारण प्रतियोगिता का आयोजन भी किया गया। छात्रों ने संस्कृत भाषा में मंत्रमुग्ध कर देने वाले कर्णप्रिय गीतों से सबका मन मोह लिया। 'संस्कृत भाषा अति सरलं न च क्लिष्टं मनसा सततं स्मरणीयं'' की सुर लहरियों ने समां बाँध दिया। प्रधानाचार्या श्रीमती विनोद सरोच जी ने छात्रों को सम्बोधित करते हुए छात्रों व अध्यापक वर्ग के प्रयासों को सराहा व संस्कृत भाषा में अन्य प्रतियोगिताओं का आयोजन करने का आह्वान किया।

डी.ए.वी. नाभा में हुआ मेरी बेटी मेरा गौरव अभियान का आयोजन

डी.ए.वी. सैट.पब्लिक (सीनियर सैकंडरी) स्कूल नाभा मे विद्यालय के परिसर में मेरी बेटी मेरा गौरव अभियान का आयोजन किया गया। इस अवसर पर स्कूल की प्रधानाचार्या श्रीमती मंजुला सहगल जी ने अपने संबोधन में बताया कि आज निरंतर असंतुलित होते लिंगानुपात ने जिम्मेदार समाज चिंतकों की नींद उड़ा दी है। कई प्रदेशों में तो लडकियों की संख्या इतनी कम हो गई है कि आने वाली पीढ़ियों की सामने संकट साफ नजर आने लगा है। यह चौकाने वाली बात है कि ग्रामीण क्षेत्रों में कन्याओं की संख्या शहरों की तुलना में अधिक है।

प्राचार्या ने कहा कि सरकार ने गर्भस्थ शिशु के लिंग परीक्षण पर रोक लगा दी थी लेकिन कन्या भ्रूण हत्या और अवैध गर्भपात का गोरखधंधा हर छोटे बड़े शहर में चल रहा है। जिसके चलते स्त्री पुरुष अनुपात लगातार असंतुलित होता जा रहा है।

कन्या भ्रूण हत्या को रोकने के लिए शासन द्वारा अधिक समाज के सजग प्रयासों की जरूरत है। यदि हम अपने सामाजिक मुखियाओं, धार्मिक नेताओं और सभा सम्मेलनों के ज़रिए अभियान छेडें तो वह ज्यादा प्रभावी होगा। इस दौरान हमें नवदंपती को यह शपथ दिलानी होगी कि वे भ्रूण का लिंग परीक्षण नही करवाँएगे और न ही जन्म लेने वाली कन्याओं से कोई भेदभाव बरतेंगे। आर्य समाज व डी.ए.वी. संस्थाओं ने भी इस दिशा में पहलकदमी की है जिसका प्रभाव सापने आना बाकी है। हालात चिंताजनक अवश्य हैं मगर निराशाजनक नहीं।

मुद्रक व प्रकाशक – श्री प्रबोध महाजन, सभा मंत्री द्वारा मदन गोयल के प्रबंध में अरावली प्रिंटर्स एण्ड पब्लिशर्स (प्रा.) लि., डब्ल्यू-30, ओखला, फेस-II, नई दिल्ली-110020 (दूरभाष 26388830-32) से मुद्रित कार्यालय 'आर्य जगत्' आर्यसमाज भवन, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 से प्रकाशित। स्वामित्व – आर्य प्रादेशिक प्रतिनिधि सभा, मन्दिर मार्ग, नई दिल्ली-110001 (दूरभाष : 23362110, 23360059) सम्पादक – श्री पूनम सूरी